कहानी संग्रह

प्यार के चिराग़

अबरार मुहसिन

अनुवाद

एस॰ कौसर लईक़

विषय-सूची

1. भूमिका	4
2. रक्षक	5
3. बादशाह	12
4. मंज़िल	17
5. आधा कम्बल	23
6. माँ के प्यार से रौशन चिराग़	29
7. उजालों का दूत	32
8. बड़ा आदमी	39
9. सबसे अच्छा खेल	42
10. निगहबान	46

भूमिका

'प्यार के चिराग़' आदरणीय अबरार मुहसिन साहब की नौ कहानियों का संग्रह है। लेखक ने कहानी के अदब को ध्यान में रखते हुए बड़ी ही निपुणता के साथ इन कहानियों की रचना की है। लेखक ने कहानियों के रूप में समाज की व्याकुलता और बेचैनी की तस्वीरें खींची हैं। ये कहानियाँ समाज के सुधार और निर्माण का प्रभावी मार्गदर्शन प्रस्तुत करती हैं।

जनाब अबरार मुहसिन की ये कहानियाँ देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर सजग पाठकों से प्रशंसा प्राप्त कर चुकी हैं।

लेखक ने इन कहानियों को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करके इस्लामी साहित्य के भण्डार में उल्लेखनीय वृद्धि की है।

अगर अल्लाह ने चाहा तो इन कहानियों के अध्ययन से अन्धकारमय ज़िन्दगियों में नैतिकता और सत्य की रौशनी बिखरेगी।

निस्सन्देह आदरणीय अबरार मुहसिन साहब इस्लाम-पसन्द अदबी हल्क़े की तरफ़ से शुक्रिया के पात्र हैं।

—प्रकाशक

रक्षक

क़स्बे के सिरे पर जहाँ ऊँची-नीची, कच्ची-पक्की इमारतों का बेतरतीब सिलसिला ख़त्म होता था वहीं मरहूम ज़मींदार रहीम बख़्श की पक्की हवेली सबसे अलग-थलग खड़ी थी। ज़मींदार साहब की ज़िन्दगी में हवेली की सज-धज ही निराली थी। मेहमानख़ाने में सारा दिन क़स्बेवालों की भीड़ किसी न किसी ज़रूरत से ज़मींदार साहब को घेरे रहती थी। कोई लगान में कमी कराने आता तो कोई रुपये क़र्ज़ माँगता। ज़मींदार साहब दिल के बादशाह थे। वे हर आदमी की ज़रूरत पूरी किया करते थे। रुपये पानी की तरह बहाते। आम ज़मींदारों की तरह उन्होंने काश्तकारों पर कभी कोई ज़ुल्म-ज़्यादती नहीं की, बल्कि उनके दुख-सुख का हमेशा ख़याल रखा। उनकी बीवी अक्सर शिकायत करतीं—

"अगर तुम्हारे यही ढंग रहे तो कौड़ी-कौड़ी को मुहताज हो जाओगे। आख़िर हमारे दो बच्चे हैं, उनके लिए भी तो कुछ इकट्ठा कर लो।"

रहीम बख़्श हमेशा मुस्कराकर एक ही जवाब देते— "हमारे पैदा करनेवाले को वे लोग सख़्त नापसन्द हैं जो सिर्फ़ अपनी ही झोली भरना जानते हैं। देखो हमारे पास जो कुछ भी है वह हमारा नहीं, बल्कि खुदा का दिया हुआ है। इसलिए इसमें खुदा के बन्दों का बराबर का हिस्सा है। उसने हमें इस क़ाबिल बनाया है कि हम दूसरों की ज़रूरतें पूरी करें। खुदा फ़ैयाज़ (दानी) है। उसकी नेमतें हवा, धूप, फल-फूल सबके लिए हैं। चाँद-सूरज पूरी फ़राख़दिली के साथ अपनी रौशनी लुटाते हैं। फूलों की भीनी-भीनी खुशबू सबके लिए आम है। न फूल खुशबू देने में कंजूसी करते हैं और न चाँद-सूरज रौशनी देने में तंगदिली से काम लेते हैं। फिर इनसान कंजूस क्यों बने? याद रखो जिसने पैदा किया है वही पालेगा भी, यह जहान उसका है, मेरा नहीं। फिर मैं क्यों कल की परवाह करूँ?" बीवी यह दलील सुनकर चुप हो जाती।

ज़मींदार साहब जिस क़द्र दौलत ख़र्च करते थे उससे कहीं ज़्यादा आ

जाती थी— जिस तरह नदी का पानी हमेशा बहता रहता है, फिर भी उसमें कोई कमी नहीं आती। कुछ वक़्त के लिए पानी ज़रूर घट जाता है, मगर बरसात के मौसम में फिर इतना हो जाता है कि किनारों से सिमटता तक नहीं।

रात को अँधेरा फैलते ही हवेली में मशालें जल उठती थीं। उसमें दिन-रात क़हक़हे गूँजते थे। मगर वक़्त को चैन नहीं, यह हमेशा करवटें बदलता रहता है। दिन के बाद रात और धूप के बाद छाँव— दुनिया का यही दस्तूर है।

एक बार बरसात का मौसम था। क़स्बे के पास बहनेवाली नदी में ज़ोर की बाढ़ आई हुई थी। ज़मींदार साहब बेगम के साथ नदी के उस पारवाले गाँव से कश्ती में वापस लौट रहे थे। बीच में आकर कश्ती उलट गई और दोनों डूब गए। दोनों बच्चे यतीम हो गए। बच्चों की दुनिया अँधेरी हो गई। एक साथ माँ और बाप दोनों की अचानक मौत का ग़म उनपर पहाड़ बनकर टूटा था। भरी-पूरी दुनिया में अकेले रह गए थे, कोई अपना न था।

ज़मींदार साहब के ख़त्म होते ही ख़ुदग़र्ज़ लोगों ने बच्चों को कमसिन (कम उम्र) और बेबस समझकर उनके साथ बेगाना (पराया) जैसा सुलूक करना शुरू कर दिया। कुछ ऐसे भी निकले जिन्होंने ज़मींदारी के तमाम काग़ज़ात पार कर लिए। ज़मींदार साहब की ज़िन्दगी भर की सारी इनायतें भुला बैठे। अब मेहमानख़ाने में कोई भीड़ नहीं होती थी। शमा के बुझते ही ख़ुदग़र्ज़ परवाने भी अपनी राह लेते हैं। अब उस हवेली में दिन छिपने के बाद शमाओं का मेला नहीं लगता था बल्कि हवेली किसी यतीम की तरह अँधेरे में डूबी गुम-सुम खड़ी रहती।

क़स्बेवाले हमेशा हवेली के बारे में सोचते रहते थे, और इसकी वजह वह दौलत थी जो कुछ भरोसे के लोगों के कहने के मुताबिक़ ज़मींदार साहब ने बच्चों के आड़े वक़्त के लिए हवेली में किसी जगह ज़मीन में छिपाकर रख दी थी। किस जगह? यह किसी को मालूम न था। हर किसी की यही तमन्ना थी कि वह दौलत उसके हाथ लग जाए।

उस इलाक़े में बदलू डाकू का बड़ा ज़ोर था। जिस तरफ़ निकल जाता क़त्ल व ख़ून का बाज़ार गर्म कर देता, जो कुछ हाथ लगता ले जाता। कहा जाता कि "उसके सीने में दिल के बजाय पत्थर का टुकड़ा है।" दौलत की ख़ातिर उसने न जाने कितने ख़ून बहाए थे। उसे आज तक किसी पर रहम नहीं आया था। लोग उसका नाम सुनकर ही काँप जाते थे। माएँ अपने बच्चों को उसका नाम लेकर डराया करती थीं। ज्यों ही रात का अँधेरा गहरा होने लगता, क़स्बेवालों के दिलों की धड़कनें बढ़ जातीं। किसी को मालूम न था कि किस अँधेरे ने बदलू को छुपा रखा है, न जाने कब वह मौत बनकर क़स्बे पर आन पड़े। आस-पास के देहातों में बदलू और उसके साथियों ने बड़ी तबाही मचा रखी थी। बदलू को भी आख़िर ज़मींदार साहब की छुपाई हुई दौलत का पता हो ही गया।

क़स्बेवालों ने उड़ती-उड़ती ख़बर सुनी कि बदलू इस दौलत के लिए किसी रोज़ हवेली पर डाका मारनेवाला है।

"ख़ुदा हमें अपनी हिफ़ाज़त में ही रखे।" क़स्बेवालों ने कहा, "कहीं उसका रुख़ हमारी तरफ़ हो गया तो ग़ज़ब हो जाएगा।"

"वह दोनों बच्चों को क़त्ल कर देगा और हवेली खुदवा डालेगा," एक शख़्स बोला। "ख़ुदा हमारे बच्चों और हमारे घरों की हिफ़ाज़त करे।" लोगों ने सहमकर दुआएँ माँगीं।

वह बरसात की एक डरावनी रात थी। मूसलाधार बारिश हो रही थी। काले-काले बादल गरज रहे थे। बिजली बार-बार चमक रही थी। चारों तरफ़ गहरा अँधेरा छाया हुआ था। क़स्बे में कोई आवाज़ सुनाई न देती थी सिवाय बारिश के शोर और बिजली के कड़ाकों के।

ज़मींदार साहब की हवेली के पास कई परछाइयाँ आकर ठहर गईं। यह बदलू का गरोह था।

"तुम लोग यहीं ठहरो।" बदलू ने अपने साथियों से कहा और चेहरे पर से पानी की बूँदें पोंछने लगा। उस वक़्त उसका चेहरा वाक़ई भयानक लग रहा था।

वह हवेली की तरफ़ देखता हुआ बोला—

"वह रौशनी देख रहे हो। ज़मींदार के बच्चे उसी तरफ़ हैं। मैं अन्दर दाख़िल होते ही सबसे पहले उन्हें ख़त्म कर दूँगा और रौशनी गुल कर दूँगा, बस तुम भी अन्दर आ जाना। हम हवेली खोद डालेंगे। इस वक़्त कोई भी इधर नहीं आ सकता। इतमीनान से रात भर दौलत तलाश करेंगे, सुना है काफ़ी माल है।"

"जो हुक्म सरदार!" साथियों ने सिर हिला दिए।

"याद रखना! रौशनी ग़ायब होते ही हवेली में घुस पड़ना। रात अँधेरी है और बच्चे अकेले हैं। बस चन्द लम्हों में उन्हें ठिकाने लगा दूँगा।" बदलू ने चलते वक़्त कहा, और अँधेरों में गुम हो गया।

उसके साथी उस कमरे की तरफ़ नज़रें गड़ाए ध्यान लगाकर देखने लगे जिसमें रौशनी नज़र आ रही थी।

बदलू दीवार पर चढ़कर अन्दर कूद गया और रौशनीवाले कमरे की तरफ़ बढ़ने लगा। वह जानता था कि बच्चों की चीख़-पुकार बारिश के शोर से दब जाएगी। इसके अलावा बदलू के सामने आने की हिम्मत कौन कर सकता था? बच्चे बिलकुल तनहा थे। उनकी हिफ़ाज़त करनेवाली सिर्फ़ हवेली की बेजान दीवारें थीं, जिन्हें वह फाँद चुका था। अब बेशुमार माल व दौलत का मालिक वह होगा। उस दौलत का, जो यतीम बच्चों के लिए किसी जगह छिपी हुई थी।

कमरे के पास पहुँचकर उसके क़दम ठहर गए। अन्दर से बच्चों की बातें करने की आवाज़ें आ रही थीं। एक कोने में चिराग़ जल रहा था।

दोनों मासूम बच्चे जिनमें एक आठ साल का लड़का और दूसरी छोटी बहन थी, एक-दूसरे से लिपटे हुए थे। बदलू ने जेब से एक लम्बा सा चाकू निकाल लिया।

"भैया!" बहन डरते हुए बोली— "मुझे छुपा लो, डर लग रहा है। अँधेरी रात है। बड़े ज़ोर से बारिश हो रही है, बादल गरज रहे हैं।"

"डरो नहीं!" भाई ने इतमीनान दिलाया हालाँकि उसकी आवाज़ भी ख़ौफ़ से काँप रही थी।

"अगर ऐसे में बदलू यहाँ आ जाए तो क्या होगा?" बहन ने फिर कहा, हमारी तो हिफ़ाज़त करनेवाला भी कोई नहीं, क़स्बेवाले सब सो रहे हैं।"

"ऐसा न कहो। हमारी हिफ़ाज़त करनेवाला वह है जिसने हमें पैदा किया है, जो बादलों को बरसने का हुक्म देता है। मुन्नी! वह हमें भूल नहीं सकता। कभी किसी को नहीं भूलता। अम्माँ कहा करती थीं कि आदमी खुद अपने आपको भूल सकता है, लेकिन वह सब कुछ देखता रहता है। न उसे ऊँघ आती है और न वह सोता है। उसे इन अँधेरों में भी साफ़-साफ़ नज़र आता है। अब्बा कहा करते थे कि हमें कभी डरना नहीं चाहिए, क्योंकि हमारा रखवाला खुदा है, जो सबसे ज़्यादा ताक़तवर है। इस दुनिया का हक़ीक़ी बादशाह वही है, हम सब उसके गुलाम हैं। वह हमेशा हमारे साथ रहता है। हमें कभी अकेला नहीं छोड़ता। दिन और रात में , अँधेरों और उजालों में वह हमारे बहुत नज़दीक है। फिर हम क्यों डरें? जो लोग उसपर यक़ीन नहीं रखते वही अँधेरों से डरते हैं।"

बदलू उनकी बातचीत का एक-एक लफ़्ज़ सुन रहा था। उसके हाथ में खुला हुआ चाकू था और दिमाग़ में कौंदे लपक रहे थे। कमरे के अन्दर चिराग़ की लौ काँप रही थी।

"खुदा के अनगिनत फ़रिश्ते हैं। जब खुदा हमारे साथ है तो उसके अनगिनत फ़रिश्ते भी हमारे साथ हैं। हम अकेले कहाँ हैं!" लड़का बोला, "बस अब उसका नाम लेकर सो जाओ। कुछ भी नहीं होगा, हम सो जाएँगे, मगर वह जागता रहेगा, हमेशा से जाग रहा है।"

"यह चिराग़ बुझनेवाला है।" बहन ने कहा।

"उसे भी वही जलाएगा।" भाई की आवाज़ आई। "क्या तुमने नहीं देखा आसमान पर उसने लाखों चिराग़ जला रखे हैं, जो कभी नहीं बुझते। इन काले बादलों के पीछे वे इस वक़्त भी जल रहे हैं। क्या वह हमारे नन्हें से चिराग़ को एक रात भी नहीं जला सकता?"

बदलू के ज़ेहन में बादल गरज रहे थे, दिल में तूफ़ान उठ रहा था। और चाकूवाला हाथ काँप रहा था।

बच्चे ख़ामोश हो गए। थोड़ी देर में वे नींद की गोद में चले गए। बदलू गुम-सुम खड़ा चिराग़ को देख रहा था जो बस बुझने ही वाला था। बदलू जल्दी से कमरे में दाख़िल हुआ और चिराग़ के पास पहुँच गया। बत्ती जल चुकी थी। उसने चाकू की नोक से बत्ती ऊपर की तरफ़ सरका दी। रौशनी एकदम बढ़ गई। बदलू की आँखों से आँसूओं के दो मोती लुढ़क पड़े, फिर न जाने क्यों आँसुओं की झड़ी लग गई।

उसने सोते हुए बच्चों के मासूम चेहरों की तरफ़ देखा। वे बेख़बर थे। उन्हें अँधेरी रात की परवाह न थी और न बदलू का ही डर था। बदलू काँप गया। उसे महसूस हुआ कि वे अकेले नहीं उनके साथ फ़रिश्तों की एक लम्बी क़तार मौजूद है।

उसने आगे बढ़कर चाकू जेब में रख लिया और झुककर दोनों की पेशानियाँ चूम लीं।

"मेरे बच्चो!" धीरे से बड़-बड़ाया। "सुकून की नींद सोते रहो हज़ार बदलू भी तुम्हारा बाल बीका नहीं कर सकते। बदलू के पास सिर्फ़ जुल्म की ताक़त है मगर तुम्हारे साथ वह सबसे ज़बरदस्त ताक़त है जो अँधेरों में चिराग़ जलाती है। उस सबसे बड़ी ताक़त ने आज बदलू को ख़त्म कर दिया। इतमीनान से सोते रहो। तुम बिलकुल महफ़ूज़ हो। मैं जानता हूँ कि क़स्बे के लोग भी इस दौलत को हासिल करना चाहते हैं, जो तुम्हारे बाप ने कहीं छिपा दी है। हो सकता है कुछ शैतान इस अँधेरी रात में वह दौलत हासिल करने इधर आ निकलें। मगर तुम बेफ़िक्र सोते रहना। बदलू सारी रात तुम्हारी हिफ़ाज़त करेगा। आगे भी हर अँधेरी रात में वह हवेली के आस-पास मौजूद रहेगा, ताकि यतीम बच्चों की दौलत महफ़ूज़ रहे।"

यह कहकर वह दबे पाँव बाहर निकल आया। बिजली चमकी तो उसने देखा कि एक छोटी-सी दीवार में से कुछ ईंटें बारिश के ज़ोर से उखड़कर गिर पड़ी थीं। वहीं चाँदी के बहुत से सिक्के भी बिखरे पड़े थे। दौलत उसी दीवार में छिपी थी। बदलू ने वे सिक्के दीवार में जमाकर उन ईंटों को मज़बूती के साथ उसी जगह लगा दिया।

उसके साथी सारी रात बारिश में खड़े कमरे की रौशनी बुझने का इन्तिज़ार करते रहे। एक बार रौशनी बिलकुल ही धीमी हुई, मगर फिर तेज़ हो गई थी। वे हैरान थे कि बदलू, इतना ज़बरदस्त डाकू, दो बच्चों को ख़त्म नहीं कर सका।

जब बारिश थमी तो क़स्बे में मुर्गों की बाँग सुनाई देने लगी। उन्होंने देखा कि बदलू दीवार फलाँगकर बाहर आ रहा है।

"वे अकेले नहीं हैं!" बदलू साथियों के नज़दीक आकर बोला, "उनके साथ बहुत बड़ी ताक़त है। कमरेवाली रौशनी भी कभी नहीं बुझेगी। चलो, भाग चलें। उस सबसे बड़ी ताक़त ने बदलू का क़त्ल कर दिया।"

डाकू हैरानी से बदलू का मुँह तकते हुए उसके साथ चले गए।

क़स्बेवाले भी हवेली से डरने लग गए, क्योंकि उन्होंने अँधेरी रातों में उसके आस-पास एक साया मण्डलाते देखा है, जिसे वे भूत या शैतान समझते हैं और दोनों बच्चों को यक़ीन है कि वह कोई फ़रिश्ता है, जो उनके चिराग़ को रात के वक़्त बुझने नहीं देता। उस दिन के बाद से उस दीवार की ईंटें कभी नहीं गिरीं जिसने उन यतीम बच्चों की अमानत छुपा रखी है।

लोगों का कहना है कि बदलू मर गया, क्योंकि अब कभी डाका नहीं पड़ता और बदलू जानता है कि लोग ठीक ही कहते हैं।

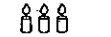

बादशाह

शहज़ादा अपनी ख़ाबगाह में मख़मल के नर्म गद्दों पर लेटा था। मसहरी के चारों तरफ़ लगे हुए बारीक रेशमी परदों में से मोमबत्तियों की हल्की और ठंडी रौशनी छन-छनकर अन्दर आ रही थी। ख़ाबगाह तरह-तरह की ख़ुशबुओं से महक रही थी। बाहर दो पहरेदार नंगी तलवारें लिए ख़ामोशी के साथ पहरा दे रहे थे। बाँदियाँ नींद लानेवाली मीठी लोरियाँ सुनाकर अभी-अभी गई थीं। मगर नींद शहज़ादे की आँखों से कोसों दूर थी। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। चिलचिलाती धूप में भेड़ें चराते-चराते थकन से चूर होकर वह किसी पेड़ की छाँव के नीचे पत्थर से टेक लगाकर बेख़बर सो जाता था। सर्दी की रातों में जब कड़ाके की ठंड पड़ रही होती, उस वक़्त भी वह फटे हुए कम्बल में लिपटकर ऐसा बेसुध सोता कि सुबह को ही आँख खुलती। आज महल के शानदार कमरे में नरम, गद्दों पर भी उसे नींद नहीं आ रही थी।

उसकी क़िस्मत कुछ इस तरह बदली थी कि वह ख़ुद हैरान था। चरवाहे का बेटा अचानक शहज़ादा बनकर महल में आ गया था। बुज़ुर्ग मंत्री ने उसे उसकी सारी कहानी सुनाई थी।

उस मुल्क के बादशाह की सिर्फ़ एक बेटी थी जिसे बाप ने बड़े लाड-प्यार से पाला था। मगर एक दिन बादशाह अपनी इकलौती बेटी से नाराज़ हो गया, क्योंकि शहज़ादी एक मामूली सिपाही के साथ शादी करना चाहती थी जबकि बादशाह उसकी शादी पड़ोस के एक बूढ़े बादशाह के साथ करना चाहता था।

"मगर वह तो उम्र में आप से भी बूढ़ा है।" शहज़ादी ने एतिराज़ किया। "बादशाह कभी बूढ़े नहीं हुआ करते।" बाप ने जवाब दिया। "और फिर इस शादी से हमारी ताक़त दुगुनी हो जाएगी। तुम्हें उस बादशाह से शादी करनी ही होगी।"

"मैं तो उस सिपाही से ही शादी करूँगी।" शहज़ादी ने पूरा ज़ोर देकर

कहा। बादशाह ने कहा "शहज़ादियाँ सिर्फ़ शहज़ादों से ही शादी कर सकती हैं, और सिपाही यूँ भी हमारे डर से भाग गया है।"

शहज़ादी यह सुनकर फूट-फूटकर रोने लगी। अस्ल में वह छिपकर उस सिपाही से शादी कर चुकी थी। उसी रात के अँधेरे में सिपाहियों ने बादशाह के हुक्म से उस सिपाही को मार डाला। शहज़ादी को कुछ ख़बर न हुई। वह दिन-रात आँसू बहाती थी। दिन गुज़रते रहे। एक रात राजकुमारी ने एक बच्चे को जन्म दिया। बादशाह को यह फ़िक्र हुई कि प्रजा को पता हो जाएगा कि शहज़ादी ने एक सिपाही से शादी कर ली थी। इसमें शाही ख़ानदान की बड़ी बदनामी होगी। उसने मंत्री को बुलाकर मशवरा किया। मंत्री ने बड़ी होशियारी के साथ चुपके से बच्चे को ग़ायब कर दिया और शहज़ादी से बहाना कर दिया कि बच्चा मरा हुआ पैदा हुआ था। शहज़ादी दुख से घुल-घुलकर मर गई। मंत्री बच्चे को एक चरवाहे के सुपुर्द कर आया था ताकि उसका साया ऊँचे महल पर न पड़ने पाए।

बच्चा बड़ा होने लगा। वह रोज़ाना सुबह-सवेरे भेड़ों को लेकर चरागाह की तरफ़ निकल जाता। खुली फ़िज़ा उसे बहुत पसन्द थी। सरदी का ज़माना हो या गर्मियों की धूप या बरसात के अँधेरे, वह भेड़ों को चरने के लिए छोड़कर इतमीनान से किसी पत्थर पर बैठकर बाँसुरी बजाता रहता और कभी रंगीन चिड़ियों के गीत सुनता। दिन भर ख़ूब थककर घर आता और ज्वार की रोटियाँ दूध में भिगोकर पेट भरकर खाने के बाद पैर फैलाकर सो जाता। वह ग़रीबी की ज़िन्दगी थी, मगर आज़ाद थी। वह अपनी मरज़ी का मालिक था, जो दिल में आता था वह करता था। उसका दिल हर तरह के फ़िक्र से पाक था, दिमाग़ पर किसी तरह का बोझ न था, और इसी वजह से वह ख़ुश था। मगर कभी-कभी वह दूर बादशाह के महल के सुनहरी मीनारों को देखकर यह ज़रूर सोचता था कि जब मुझ ग़रीब की ज़िन्दगी इतनी अच्छी है तो फिर महल की ज़िन्दगी कितनी दिलकश होगी। जहाँ सोने-चाँदी के ढेर हों, हर तरह का आराम हो, वहाँ ख़ुशी का क्या ठिकाना! जब ज़मीन के फ़र्श पर इतनी अच्छी नींद आती है तो फिर मख़मल के गद्दों पर कितने मज़े की नींद आती होगी। जब ज्वार की रोटी में इतनी लज़्ज़त है तो उम्दा खानों

में कितना मज़ा होगा।

"काश मैं शहज़ादा होता!" वह सोचता।

एक दिन उसकी तमन्ना पूरी हो गई। बादशाह बहुत बूढ़ा हो गया था और चल-चलाव के दिन थे। उसका कोई वारिस नहीं था। ऐसे वक़्त उसे अपनी बेटी का वह भूला-बिसरा बच्चा याद आया। चुनाँचे उस लड़के को महल में लाया गया। बादशाह ने मरने से पहले मंत्री से कहा, "इस लड़के को शहज़ादों की तरह तालीम दो। उसे शाही आदाब और तौर-तरीक़े सिखाओ और छः महीने बाद उसके सिर पर ताज रख दो।

शहज़ादा महल में तरबियत हासिल करने लगा। अनगिनत उस्ताद थे जो उसे इल्म सिखाने के अलावा रहने-सहने के तरीक़े भी बताते थे। इन उस्तादों से वह परेशान हो गया। लज़ीज़ खानों को देखकर वह उनपर टूट पड़ना चाहता था, मगर उस्ताद कहता कि धीरे-धीरे खाओ। इस तरह निवाला मुँह में रखो और इस तरह चबाओ। खाने का सारा मज़ा ही जाता रहता। वह ज़मीन पर आज़ादी के साथ क़दम रखना चाहता था, मगर उस्ताद ने उसकी चाल पर पहरे बिठा दिए। उनका कहना था कि शहज़ादों की चाल आम लोगों से अलग होती है। शाही लिबास में लड़के का बदन अकड़कर रह गया। अब उसका जागना-सोना, खाना-पीना, उठना-बैठना, हँसना-बोलना सब उस्तादों की मरज़ी के पाबन्द थे। वह क़हक़हे लगाना चाहता तो उस्ताद उसे सिर्फ़ होंटों-होंटों में ही मुस्कराने की इजाज़त देते। यह नई ज़िन्दगी उसे कुछ ज़्यादा न भाई। उसका दम घुटने लगा, फिर भी ताज पहनने की ख़ुशी में वह सब कुछ बरदाश्त करता रहा। ताज सिर पर रखने के लिए इनसान को क्या-क्या बर्दाश्त नहीं करना पड़ता। अपनी रूह की आज़ादी बेचकर इनसान सुनहरे रंग का वज़न सिरपर रखकर ख़ुश हो लेता है।

अगली सुबह को भरे दरबार में लड़के के सिरपर ताज रखा जानेवाला था। ताज बड़ा क़ीमती था। उसमें लाल रंग का एक पत्थर लगा था, जो दुनिया के तमाम जवाहरात से ज़्यादा क़ीमती था। कल वही ताज उसका होगा और इतना क़ीमती ताज पहनकर उसका सिर फ़ख़्र से बुलन्द हो

जाएगा। रात बीत रही थी। हर तरफ़ ख़ामोशी थी। मोमबत्तियाँ धीरे-धीरे जल रही थीं। लड़के की आँखों में नींद का धुआँ भरने लगा और इस धुएँ में उसे कुछ तस्वीरें नज़र आने लगीं।

उसने देखा.....नीले समुद्र की लहरों पर एक बादबानी जहाज़ हिचकोले खा रहा था। उसके दोनों तरफ़ बहुत-से गुलाम रस्सियों से जकड़े हुए बैठे पतवारें चला रहे थे। गुलामों के बदन हड्डियों के ढाँचे थे, उनके चेहरे पीले और उदास थे। अचानक एक गुलाम ने चीख़ मारी और पतवार उसके हाथ से छूट गई। नज़दीक खड़े हुए सिपाही का कोड़ा उसकी कमर पर पड़ा। मगर रस्सियों में जकड़ा हुआ गुलाम हमेशा के लिए आज़ाद हो चुका था। सिपाहियों ने बुरा-सा मुँह बनाकर गुलाम का मुर्दा जिस्म समुद्र में फेंक दिया और उसकी जगह एक और गुलाम को बिठा दिया।

फिर सिपाही एक गुलाम लड़के को लाए, उसकी कमर में रस्सी बाँधी, उसके कान और नाक के सुराख़ों को मोम से बन्द करके उसे समुद्र में उतार दिया। रस्सी का सिरा सिपाहियों के हाथ में था। थोड़ी देर के बाद रस्सी खींचने पर गुलाम लड़का पानी से बाहर आया। उसके हाथ में एक मोती था। सिपाहियों ने मोती ले लिया।

इतने में एक आदमी जो क़ीमती कपड़े पहने हुए था, सिपाहियों के पास आया। वह बूढ़ा मंत्री था। मंत्री ने मोती देखकर कहा, "यह मोती तो बहुत छोटा है, शाही ताज के क़ाबिल नहीं है। गुलाम को फिर समुद्र में उतारो।"

इसी तरह गुलाम लड़के को बार-बार समुद्र में उतारा गया। हर बार वह एक मोती निकाल लाता। उसकी हालत ख़राब हो चली थी। आख़िरी बार जब उसे बाहर निकाला गया तो उसका जिस्म मुर्दा था। उसके खुले हुए मुँह से ख़ून निकल रहा था और ख़ून की बूँदें उसकी मुट्ठी में दबे हुए एक बड़े-से हीरे पर पड़ रही थीं जिसकी वजह से हीरे का रंग लाल हो गया था।

"लाल पत्थर!" मंत्री ख़ुशी से चिल्ला उठा। "हाँ, यह शाही ताज में लगाया जाएगा।"

गुलाम लड़के का मुर्दा जिस्म समुद्र में फेंक दिया गया।

अगले दिन नया बादशाह भरे दरबार में राजगद्दी पर बैठा था। मगर उसका चेहरा पीला पड़ गया था। जब मंत्री हाथों में ताज सम्भाले उसकी तरफ़ बढ़ा तो वह उसमें लगे हुए लाल पत्थर को देख कर ख़ौफ़ से चीख़ उठा– "नहीं, नहीं, इसे मुझ से दूर रखो। इस पत्थर पर इनसान का ख़ून लगा हुआ है। यह ख़ूनी पत्थर है, मैं यह ताज नहीं पहनूँगा।"

"मगर ताज पहने बग़ैर आप बादशाह कैसे बनेंगे?" मंत्री ने कहा।

"और बग़ैर ताज का बादशाह हमें मंज़ूर नहीं," दरबारी चिल्लाए।

"मैं इनसानी ख़ून से अपना सिर नहीं सजाऊँगा, मुझे इस बादशाहत से नफ़रत है।" वह चिल्लाया और राजगद्दी से नीचे उतरकर जंगल की तरफ़ भागा।

"यह लड़का बादशाहत के क़ाबिल नहीं।" दरबारियों ने नफ़रत से कहा।

लड़के ने जंगल में आकर चरवाहे से कहा– "मैं ख़ून का ताज अपने सिर पर नहीं रखूँगा। मैंने बादशाहत को ठुकरा दिया है। लाओ मुझे मेरा फटा हुआ कम्बल और मेरी लाठी लौटा दो। मैं भेड़ें चराऊँगा। मैं बादशाहत के क़ाबिल नहीं हूँ।"

चरवाहा धीरे से मुस्कराया और लड़के के कंधों पर फटा हुआ कम्बल रखकर और हाथ में लाठी पकड़ाकर बोला, "बेटा! तू आज फिर बादशाहों का वारिस बन गया, उनका नहीं जो अपने सिरों पर ख़ून के ताज रखते हैं, बल्कि उन बादशाहों का जिनके सिरों पर इनसानियत और मुहब्बत के ताज जगमगाते हैं। उस घिनौने महल से निकलकर तूने उन बुज़ुर्गों की राह अपनाई है जिनकी बड़ाई की गवाही आसमान पर चमकते हुए सितारे दे रहे हैं। तू आज बादशाह बन गया, असली बादशाह।"

और नया बादशाह भेड़ों को हाँकता हुआ जंगल की तरफ़ बढ़ने लगा।

मंज़िल

सर्दियों की रात के अँधेरे साये तेज़ी से फैलते जा रहे थे, जब ब्राँच लाइन के छोटे-से स्टेशन पर भाप का इंजन पाँच डिब्बों की छोटी-सी गाड़ी को घसीटता हुआ लाया और ठहरकर किसी थके हुए जानवर की तरह शूँ'शूँ करने लगा। धुएँ की मोटी चादर ने अँधेरे को और भी गहरा कर दिया था। स्टेशन मास्टर के कमरे के सामने मिट्टी के तेल से जलनेवाला लैम्प रौशन था। उस दिन गाड़ी एक घण्टा लेट आई थी। गाड़ी से उतरनेवाले बस दो-चार ही मुसाफ़िर थे जो तेज़ी से गेट पर से गुज़रते हुए बाहर जा चुके थे। सिर्फ़ एक बूढ़ी-सी औरत रह गई थी जो अपनी गठरी को सँभालने में लगी थी। ठिठुरन बढ़ती जा रही थी।

इतने में गार्ड ने सीटी बजाई, हरे रंग की लालटेन फ़िज़ा में लहराई। जवाब में इंजन ने भी सीटी मारी और गाड़ी के पहिए हरकत में आ गए। यहाँ से बैठनेवाला कोई भी मुसाफ़िर नहीं था।

बूढ़ी औरत तेज़ी से चलती हुई गेट पर आई जहाँ स्टेशन मास्टर आनेवालों से टिकट ले रहा था। वह बहुत बौखलाई हुई-सी नज़र आती थी।

"आज तो चिराग़ जले गाड़ी पहुँची है।" वह बड़बड़ा रही थी।

स्टेशन मास्टर ने टिकट लेते हुए कहा– "हाँ, आज देर से आई है। कहाँ जाओगी माँ?"

"नूरपुर।"

"तब तो कल सुबह ही जाना।" स्टेशन मास्टर बोला। "इस वक़्त तो कोई सवारी भी नहीं है। पाँच कोस का फ़ासला है।"

बूढ़ी औरत ने बेचैनी से कहा– "मेरा पहुँचना बहुत ज़रूरी है।"

स्टेशन मास्टर ने समझाने की कोशिश की, "अरे माँ! रास्ते में एक कोस का जंगल पड़ता है और सुना है कलुवा डाकू भी आजकल उधर देखा गया है।" बूढ़ी औरत काँप-सी गई, मगर वह आगे बढ़ती रही। वहीं अँधेरे में

शायद कोई बैलगाड़ी खड़ी थी। गाड़ीवान शायद बीड़ी पी रहा था। बीड़ी का जलता हुआ सिरा जुगनू की तरह चमक रहा था। "शुक्र है ख़ुदा का।" वह बड़बड़ाई और गाड़ीवान से बोली– "बेटा, मेरा नूरपुर पहुँचना बहुत ज़रूरी है। अगर उसी तरफ़ जा रहा है, तो मुझे भी साथ ले चल।"

"हूँ!" गाड़ीवान की भारी आवाज़ सुनाई दी। वह गाड़ी में बैठ गई और गाड़ी चल पड़ी। जब ज़रा इत्मीनान का साँस लिया तो देखा कि वह रब्बा (छतवाली बैलगाड़ी) था, जिसमें एक लालटेन भी लटक रही थी। लालटेन की रौशनी में उसने देखा– गाड़ीवान जवान था, गठीले जिस्मवाला, चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें थीं। न जाने किस गाँव का होगा?

वह आराम से बैठती हुई बोली, "गाड़ी देर से आई, अँधेरा फैल गया। यह सोचकर दिल काँप रहा था कि गाँव कैसे जाऊँगी? मगर बेटा, सुना है ख़ुदा की मदद हर जगह पहुँच जाती है। अब देख ले, उसने तुझे ही फ़रिश्ता बनाकर मेरी मदद के लिए भेज दिया।"

गाड़ीवान ने चौंक कर बुढ़िया की तरफ़ देखा और देखता ही रहा–एक टक.....! "मगर बेटा, ऐसी ठंडी रात में तूने बस एक कुर्ता पहन रखा है? अगर तेरा ब्याह नहीं हुआ तो माँ तो होगी ही, उसने तुझे एक कुर्ते में कैसे आने दिया? बीमार न पड़ जाएगा? मेरे पास चादर है, यह ले।"

और उसने चादर गाड़ीवान के कंधों पर डाल दी। गाड़ीवान ने फिर उसकी तरफ़ मुड़कर देखा।

अँधेरी रात, एक कोस का जंगल और....एक अकेली बूढ़ी! बहुत डर रही थी। बस ख़ुदा पर भरोसा करके चल खड़ी हुई– करती भी क्या? बुढ़िया बोली, दो दिन बाद बेटी की बारात आ रही है। चाँदी का कुछ ज़ेवर तो होना ही चाहिए। मगर मुझ बेवा के पास पैसे कहाँ? शहर में रिश्ते की एक बहन रहती है। बस उससे रुपया उधार लिया और ज़ेवर लाई हूँ। कोई बेटा होता तो मुझे क्यों हड्डियाँ धुननी पड़तीं? जाना तो मुझे ही था। पूरे पाँच हज़ार के ज़ेवर हैं। ज़मींदार साहब भी इसी गाड़ी से आनेवाले थे। वे भी बेटी का दहेज ख़रीदने गए थे, कम से कम पचास हज़ार का। मगर वे नहीं आए देर

हो गई होगी ख़रीददारी करते-करते। मैं अकेली ही रह गई। ऊपरवाले का एहसान है कि तू मिल गया। स्टेशन मास्टर कह रहा था कि कलुवा डाकू भी आस-पास देखा गया है। बेटा, मैं बहुत डर रही हूँ, ज़रा ये ज़ेवर अपने पास रख ले, नूरपुर पहुँचकर ले लूँगी।"

उसने ज़ेवर की पोटली गाड़ीवान को पकड़ा दी। गाड़ीवान ने उसकी तरफ़ देखा और देखता ही रहा।

"अब मैं आराम से बैठ सकूँगी। बेटा, तुझे डर तो नहीं लगता कलुवा से? सुना है बड़ा ज़ालिम है वह। जगह-जगह डाके डालता फिरता है। मुसाफ़िरों को लूट लेता है। लोग उसे बद्दुआएँ देते हैं, कोसते हैं। बेटा लूटी हुई दौलत से कभी भला नहीं होता। दिलों को दुखाना बहुत बड़ा गुनाह है। रातों के अँधेरों में लूट-मार करनेवाले नादान नहीं जानते कि वह (अल्लाह) हज़ारों आँखों से उनकी एक-एक हरकत को देख रहा है और जल्द ही वह उनसे हिसाब लेगा। डाकू अपनी ताक़त के बल पर लूटता है, मगर वह नहीं जानता उससे बड़ी भी एक ताक़त है। बेटा! मैं बूढ़ी नादान बड़ी-बड़ी बातें क्या जानूँ। बस इतनी नसीहत याद रखना कि बुराई का नतीजा हमेशा बुरा ही होता है, और बेटा! ख़ुदा बुरे काम करनेवालों के माथे पर उनकी बुराइयों की छाप डाल देता है, उनके चेहरों से ही बुराई ज़ाहिर हो जाती है और नेक लोगों के चेहरे अँधेरे में भी चमकते हैं, उनपर एक मासूमियत होती है। अब अपना चेहरा ही देख ले, कैसा भोलापन लिए हुए है!"

इस बार गाड़ीवान ने फिर चौंककर बुढ़िया की तरफ़ देखा। लालटेन की रौशनी उसके जवान चेहरे पर पड़ रही थी और उसकी आँखों में भी दो चिराग़ झलक रहे थे। उसके बदन पर कपकपी-सी तारी हो गई। वह काँपते हुए हाथों से बीड़ी सुलगाने लगा।

"बुझा इसे, जानता नहीं इससे कलेजा जलता है। क्या तेरी माँ ने इतना भी नहीं बताया?"

गाड़ीवान ने सिर हिलाकर बीड़ी बुझा दी।

"बेटा, बूढ़ों का काम अच्छी बातें बताना ही तो होता है। धुएँ से कलेजा

जलता है। अच्छे लोगों को बुरी आदतों से दूर रहना चाहिए— उफ़, मेरी भी मति (बुद्धि) मारी गई है। न जाने किस वक़्त तू घर से चला होगा? भूखा होगा, मेरे पास रोटी है, थोड़ा-सा गुड़ और आम का अचार है। ये ले, अरे ले ना। तेरी अपनी माँ होती तो तुझे भूखा रहने देती? मार-मारकर खिलाती।"

गाड़ीवान ने तड़पकर उसकी तरफ़ देखा और रोटी ले ली।

"मैं भी तो तेरी माँ ही हूँ। इसी लिए तो इतनी बातें कर रही हूँ। मगर बेटा, अँधेरी रात में इस तरह अकेले नहीं आया करते। पर तू भी क्या करे—? कभी-कभी आदमी अकेला हो ही जाता है। मुझे ही देख ले। अकेली आ रही हूँ। अपना कोई भी तो नहीं। बस एक बेटी है। उसका भी ब्याह हो जाएगा। अकेलों का तो ऊपरवाला ही होता है। आदमी यह मोटी-सी बात समझता नहीं। एक-दूसरे को अकेला, बेसहारा समझकर लूटता है, एक-दूसरे का गला काटता है। हाँ, नीले आसमानवाले (अल्लाह) की हज़ार आँखों के सामने! है ना पागलपन की बातें? तू खुद ही सोच, अगर कोई चोर, सिपाही के सामने चोरी करे तो वह पागल ही तो कहलाएगा? वह जानता है कि पकड़ा जाएगा।"

गाड़ीवान ने इस बार कनखियों से मुड़कर देखा।

"और भागकर जाएगा कहाँ?" अँधेरों और उजालों के बादशाह (अल्लाह) से कहाँ तक बचेगा? क्या मिलता है इस लूट-मार से? इससे कब किसी का भला हुआ है? अब कलुवा को ही ले। अँधेरों ही का शेर है और अँधेरे ही में लिपटा रहता है। उजालों में उसके लिए कोई जगह नहीं। छिपा फिरता है। सरकार ने पचास हज़ार का इनाम रखा है उसे पकड़वानेवाले के लिए। आख़िर यह भी कोई जीना है? बिना वजह गुनाहों का बोझ अपने सिर पर बढ़ाता ही चला जाता है। क्या लूट-मार के बग़ैर गुज़ारा नहीं हो सकता? क्या ज़रूरी है कि दूसरे के हाथ से छीने हुए निवाले ही से पेट भरा जाए? चोरी-चकारी के माल में न बरकत है, न दिल का सुकून। आदमी को मेहनत से रोज़ी कमाना चाहिए। अपनी जैसी भरपूर कोशिश करता रहे, खुदा ज़रूर मदद करता है। नए-नए ज़रिए निकाल देता है। ऐसे-ऐसे हाथों से देता है

कि अक़्ल हैरान रह जाती है। बेटा! तूने मुझे इस वक़्त बड़ा सहारा दिया है। तेरा मुझपर बड़ा एहसान है। मैं एक ग़रीब बेवा (विधवा) हूँ। दो दिन बाद बारात आएगी बेटी की, और मेरे पास कुछ भी तो नहीं सिवाय इन गहनों के। मैं तुझे कुछ दे तो नहीं सकती सिवाय एक नसीहत के— कभी बुराई की तरफ़ न जाना, कभी किसी का माल हड़प न करना और कभी किसी का दिल न दुखाना। सच्ची ख़ुशी चाहिए तो दूसरों के ज़ख़्मों पर मरहम रखो, अँधेरे में चिराग़ जलाओ और जलते चिराग़ को बुझाओ मत।"

बस एकदम से आँधी-सी उठी। पेड़ ज़ोर-ज़ोर से हिलने लगे, झाड़ियों में हवा साँए-साँए कर रही थी— और फिर आँधी थम गई। गाड़ीवान ने मुड़कर देखा। उसकी आँखों में चिराग़ और ज़्यादा रौशन नज़र आ रहे थे।

गाड़ी रुक गई। बुढ़िया चौंक पड़ी। नूरपुर आ गया था। बातों में वह ऐसी खो गई थी कि उसे एहसास ही न रहा।

वह गाड़ी से उतरी।

"ख़ुदा तुझे नेकी दे, बड़ी-सी उम्र हो, ख़ुश रहे— सारी ज़िन्दगी।" वह दुआएँ देती हुई चली गई। गाड़ीवान देर तक उसकी तरफ़ देखता रहा। उसकी दोनों आँखों में सैलाब आ गया था।

वह घर पहुँचते ही चौंक पड़ी। ज़ेवर की पोटली गाड़ीवान के पास ही रह गई थी। उसने अपना सिर पीट लिया। आस-पड़ोस के लोगों को दौड़ाया। मगर गाड़ी न जाने कहाँ जा चुकी थी।

वह बहुत परेशान थी। दो दिन बाद बारात आनेवाली थी। ज़ेवर भी खो गया था। उसकी आँखों से मोटे-मोटे आँसू टपक रहे थे। बार-बार आसमान की तरफ़ देखती और कराहती थी।

अगले दिन दो सिपाही उसके दरवाज़े पर आए और उसे क़स्बे के थाने चलने को कहा। वह घबरा गई। नूरपुर में हर तरफ़ यही बात होने लगी।

थाने में दाख़िल होते ही वह चौंक पड़ी। रातवाला गाड़ीवान थानेदार के कमरे में फ़र्श पर बैठा मुस्करा रहा था। मगर यह क्या? उसके हाथ में तो हथकड़ियाँ थीं!

थानेदार ने कहा, "सुनो माँ! यह कलुवा है, कलुवा डाकू। रात तुम इसकी गाड़ी में पोटली भूल आई थीं। यह पोटली लेकर यहाँ आया और खुद को इस शर्त पर पुलिस के हवाले कर दिया कि पचास हज़ार का इनाम तुम्हें ही मिले। यह लो पोटली और इनाम भी।"

और बुढ़िया ने देखा— डाकू की आँखों में उस वक़्त भी चिराग़ रौशन थे। वे आँखें जो अँधेरे में पली-बढ़ी थीं अब उनमें उजालों के तूफ़ान उमड़ रहे थे। उन आँखों में बेपनाह खुशी थी, सुकून था और इनसानियत की चमक थी। एक बुढ़िया की बातों ने डाकू को ख़त्म कर दिया था— डाकू को बस यूँ ही राह चलते मंज़िल मिल गई—उजालों की मंज़िल—!

आधा कम्बल

जमील साहब बड़े आदमी थे। अपनी मेहनत और अक़्लमंदी के बल पर उन्होंने काफ़ी ऊँचा ओहदा हासिल कर लिया था और वह भी कम उम्री में। शादी भी एक ऊँचे घराने में हुई। बड़े घर की लड़की इतना सामान लाई कि उनका घर भर गया। उनके वालिद किसी महकमे में मामूली-सी नौकरी करते थे। अपनी छोटी-सी तनख़्वाह में बेटे को पढ़ा-लिखाकर बड़ा अफ़सर बना दिया, मगर ज़िन्दगी की इस सख़्त मेहनत और भाग-दौड़ के बाद अब वे एक थके-माँदे, बूढ़े इनसान थे— हड्डियों का पंजर, दमे के मरीज़!

घर में अब उनकी जगह उस फ़र्नीचर जैसी थी जिसे बेकार समझकर कोने में फेंक दिया जाता है। एक जदीद क़िस्म के बँगले में जो कि हर तरह के ऐशो-आराम के सामानों से सजा था जिसमें एक बीमार बूढ़े की मौजूदगी बेमेल ही तो थी। इसका सबसे ज़्यादा एहसास जमील साहब की बेगम को था।

उन्होंने शादी के चन्द दिन बाद ही जमील साहब से कहा था— "आप इतने बड़े ओहदे पर हैं और बड़े-बड़े लोगों का यहाँ आना-जाना लगा रहता है। आपके अब्बा दिन रात पलंग पर पड़े खाँसते और कराहते रहते हैं। बड़ी शर्म की बात महसूस होती है।"

जमील साहब ने जवाब दिया, "मैं क्या कर सकता हूँ? आख़िर बाप हैं, और कोई दूसरा अज़ीज़ भी तो नहीं, जिसके पास भेज दूँ।"

"अजी, तो मैंने कब कहा कि उन्हें चलता कर दीजिए," बेगम भिन्ना गईं, "मगर इतना तो कीजिए कि हमारी बेइज़्ज़ती न हो। कम-से-कम आने-जानेवालों की नज़र तो न पड़े उनपर। देखिए कलुवा माली की कोठरी ख़ाली है। उनके अकेले के लिए काफ़ी है। क्या ज़रूरी है कि सिर पर सवार रहें? मैं कहती हूँ, वहाँ आराम से रहेंगे, और अब उन्हें रहना ही कितने दिन है?"

"कलुवा माली की कोठरी!"

जमील साहब को एक लम्हे के लिए झुरझुरी-सी आ गई, लेकिन बात बड़े घर की लड़की की थी। चूँ न कर सके और शायद करना भी नहीं चाहते थे। बीमार बूढ़े से बँगले की ज़ीनत बिगड़ रही थी, और फिर अब्बा जान को तो सिर्फ़ चारपाई पर ही पड़े रहना था। माली की कोठरी भी ठीक ही थी। कम-से-कम छत तो थी। उसका मरम्मत के क़ाबिल हिस्सा भी बरसात आने से पहले ठीक करा देंगे।

जब बाप के सामने यह बात रखी तो उन्होंने कराहकर जवाब दिया, "बेटा! जहाँ मुनासिब समझो मेरी चारपाई डाल दो।"

उनके जाने के बाद बूढ़ी आँखों में से जाने कहाँ से सोते फूट पड़े।

चारपाई माली की कोठरी में जाने के बाद बँगला अच्छी तरह धुलवाया गया। काफ़ी लम्बा चौड़ा बँगला था। मियाँ, बीवी और आठ साल का एक लड़का — बहुत जगह थी उनके लिए।

दोनों वक़्त का खाना नौकर के हाथ बड़े मियाँ को पहुँचा दिया जाता था, बल्कि नौकर ही उनका खाना पकाता था। बेगम ने नौकर से कह रखा था--

"हम लोग वक़्त बे-वक़्त घर आते हैं। जब तू अपना खाना पकाया करे तो दो रोटियाँ उनके लिए भी डाल लिया कर। अब उनकी वजह से बावर्चीख़ाना चौबीस घंटे तो खुला नहीं रह सकता।"

बेगम तो कभी माली की कोठरी का रुख़ भी नहीं करती थीं, क्योंकि उसमें वैसे भी सीलन (नमी) थी। डॉक्टर ने उन्हें मना कर रखा था कि सीलन की जगहों से दूर रहें वरना छींकें आने का अन्देशा था। जमील साहब कभी-कभार चंद लम्हों के लिए रस्मन वहाँ झाँक आते थे। जब भी जाते कोठरी में बड़े मियाँ की दुआएँ उनका स्वागत करतीं—

"जीते रहो बेटा, ख़ुदा तुम्हें सभी सुख दे।"

और वह बस हूँ-हाँ करके उलटे पैरों वापस आ जाते थे।

बेगम ने बच्चे को सख़्ती से हिदायत कर रखी थी कि कभी उस कोठरी में क़दम न रखे, मगर वह मौक़ा पाकर दादा के पास चला ही जाता था।

एक दिन बेगम ने पकड़ लिया। दादा की गोद में बैठा कहानी सुन रहा था। वह आपे से बाहर हो गईं। बच्चे को दादा की गोद से घसीट कर दो थप्पड़ लगाए और ससुर से कहा—"अक़्ल मारी हुई है तुम्हारी, बच्चे को भी दमे का रोग लग गया तो? ख़ुद तो क़ब्र में पैर लटकाए बैठे ही हो, मेरे बच्चे पर तो रहम करो!"

"बहू!" बड़े मियाँ ने कुछ कहना चाहा, मगर वह पैर पटकती और यह बड़बड़ाती हुई चली गई— "न जाने इस वबाल से कब जान छूटेगी?"

शाम के वक़्त जमील साहब घर आए तो बेगम ने साफ़-साफ़ कह दिया, "आप करते रहें चोंचले बाप के, मगर उनसे कह दीजिए, ख़बरदार! जो मेरे बच्चे को पास बुलाया। अपना ख़तरनाक रोग उसे भी लगाना चाहते हैं।"

जमील साहब ने भी बाप को काफ़ी सख़्त सुस्त कहा— "अब्बा, आप तो मेरी निगाहें नीची कराते हैं। सठिया गए हैं। जब आप से मना कर दिया गया था तो फिर आपने ऐसा क्यों किया? मुझे ज़लील कराके आपको ख़ुशी होती है ना?"

बूढ़ी आँखों से फिर सोते फूट पड़े, मगर ज़बान से यही निकला— "जीते रहो बेटा! ख़ुदा तुम्हें तमाम सुख दे।"

बेगम ने बेटे पर सख़्त पहरा बिठा दिया।

माली की कोठरी और बँगले के ड्राइंग रूम के बीच एक आँगन था। दो बूढ़ी आँखें हर वक़्त ड्राइंग रूम ही की तरफ़ लगी रहती थीं। दो धुँधली आँखें जैसे बुझते हुए दो चिराग़— मायूस, दुख से लबरेज़। ड्राइंग रूम में क़हक़हे गूँजते, लॉन पर दावतें दी जातीं। उन दो वीरान आँखों के सामने वह बेटा कितना बड़ा आदमी बन गया था! अभी कल ही की बात है कि बाप के काँधों पर चढ़ा घूमा करता था। माँ तो बचपन ही में मर गई थी, बाप ही ने पाला-पोसा था। अपने सीने पर लिटाकर थपक-थपककर सुलाया था, उँगली पकड़कर चलना सिखाया था, फिर हाथ पकड़कर लिखना सिखाया। अच्छा ख़ासा बड़ा होने पर भी बाप के हाथों से ही खाना खाता था और आज वही पेड़ इतना ज़्यादा ऊँचा हो गया था कि बाप को साया भी न दे

सकता था। कहा जाता है कि जो पेड़ बहुत ज़्यादा ऊँचे होते हैं, उनका साया उतना ही कम होता है।

एक बार की बात है। जाड़ों की शाम थी। बारिश काफ़ी देर बरसकर थमी थी और धूप निकल आई थी। कड़ाके की सर्दी थी। दाँत से दाँत बज रहे थे। जमील साहब, बेगम और बच्चा तीनों ड्राइंग रूम में बैठे थे। हीटर ने कमरे को गर्म कर रखा था और कॉफ़ी का दौर चल रहा था। माली की कोठरी से खाँसी की आवाज़ और कराहों के दरमियान एक कमज़ोर-सी आवाज़ आ रही थी।

"सर्दी में अकड़ा जा रहा हूँ, ज़रा पलंग धूप में रखवा दो।"

जमील साहब सुन रहे थे। सोच रहे थे नौकर आ जाए तो पलंग धूप में रखवा देंगे। मगर बेगम का कहना था कि धूप दो घड़ी की मेहमान है, कोठरी ही में रहने दो।

"स.....सरदी..हो...हो...हो...हो...हाय...मैं...मरा!"

जमील साहब ने बेगम से कहा– "भई वह पुराना कम्बल ऊपरवाली कोठरी में फ़र्श पर बिछा हुआ है, उसे अब्बाजान के ऊपर डाल आऊँ?"

"फिर फ़र्श पर क्या बिछेगा?" बेगम बड़बड़ाई, ठीक है, जैसा चाहो करो।"

जमील साहब न जाने क्यों बेगम के सामने भीगी बिल्ली बन जाते थे! बेटे से बोले– "जाओ, कम्बल दादा के ऊपर डाल आओ।"

लड़का झपटकर ऊपरवाली कोठरी में गया और कुछ देर बाद कम्बल लिए वापस आया।

"वहाँ ठहरना नहीं!" बेगम ने सख़्ती से बच्चे को ताकीद की।

लड़का कम्बल लेकर माली की कोठरी की तरफ़ गया और फिर ख़ाली हाथ वापस आ गया। जमील साहब ने पूछा– "उढ़ा आए दादा को कम्बल?"

"जी हाँ..... और जी नहीं।"

"क्या बकता है?" बेगम ने त्योरी चढ़ाकर कहा। जमील साहब भी हैरान होकर बोले, "क्या मतलब? जी हाँ.....और जी नहीं?"

लड़का बोला– "उढ़ाया तो है, मगर कम्बल नहीं– आधा कम्बल

"आधा कम्बल!" दोनों ने एक साथ कहा।

फिर जमील साहब ने कहा, "अरे, एक तो वह था ही फटा-पुराना जिसमें जगह-जगह सूराख़ थे, और तू उसमें से भी आधा ले गया!"

बेगम ने पूछा, "बाक़ी आधा कहाँ है?"

"वहीं, ऊपरवाली कोठरी में पड़ा है", लड़का बोला, "मैंने कैंची से दो बिलकुल बराबर हिस्से कर दिए हैं।"

जमील साहब हँसने लगे। "कमाल है भई! मैं पूछता हूँ, बाक़ी आधे का क्या करेगा? तेरे किस काम का है?"

लड़का बोला, "वह आधा भी काम आएगा।"

माँ-बाप दोनों खिलखिलाकर हँस दिए। जमील साहब ने कहा, "अजीब है यह लड़का भी, कहता है वह आधा भी काम आएगा, किसके?"

लड़के ने तड़ाक से जवाद दिया, "आपके।"

जमील साहब और बेगम ने हैरत से कहा, "क्या बक रहा है?"

"ठीक ही तो कह रहा हूँ।" लड़के ने मासूमियत से कहा। "दादाजान को भी क्या पता था कि वह पुराना कम्बल उनके काम आएगा।"

"तो फिर अब्बाजान! हो सकता है सर्दियों की एक ऐसी ही शाम हो। मैं बड़ा होकर अपनी बीवी और बच्चों के साथ ड्राइंग रूम में हीटर के पास बैठा होऊँ। अब्बाजान आप माली की कोठरी में अकेले पड़े हों– अकेले, क्योंकि दादी की तरह अम्मी भी ख़ुदा के पास जा चुकी हों। हाँ, तो अब्बाजान आप सर्दी में काँप रहे हों, चिल्ला रहे हों। उस वक़्त मैं इस आधे कम्बल को अपने हाथों से आपको उढ़ा आऊँगा। यह आधा कम्बल मैंने आपके लिए रखा है। देखिए, मैं आपसे कितना प्यार करता हूँ।"

जमील साहब और बेगम पर बिजली-सी गिर पड़ी। वे अचानक खड़े हो

गए। आँखें फटी रह गईं। ज़ेहन में भूचाल आने लगे, आँधियाँ उठने लगीं, बिजलियाँ कड़कने लगीं और उनके धमाके सालों से अँधेरे पड़े और ख़ुदग़र्ज़ी के जालों से अटे रूह के गोशों तक पहुँचने लगे। एक तूफ़ान-सा उठा जिसने एक ही लम्हे में बेहिसी की इमारत को बुनियादों से ही उखाड़कर फेंक दिया। उन्हें कुछ पता नहीं कि आगे क्या हुआ?

जब होश आया तो देखा उनके आँसू बीमार बूढ़े बाप के पैरों को धो रहे थे।

जमील साहब पैरों को आँखों से लगाए हिचकियों के बीच कह रहे थे— "मैं गुनहगार हूँ, अब्बा माफ़ कर दीजिए, मैं अन्धा हो गया था, पागल हो गया था। मैंने बड़ाई का मतलब ऊँचा ओहदा और बँगला समझा था। मगर अस्ल बड़ाई तो इन क़दमों में है। हमें सज़ा दीजिए, ठोकरें मारिए।"

बाप की ज़बान पर वही अल्फ़ाज थे— "जीते रहो बेटा, ख़ुदा तुम्हें तमाम सुख दे।"

और जमील साहब की आँखें बाप के तलवों को धोती रहीं।

माँ के प्यार से रौशन चिराग़

दिलेरू एक डाकू था, निहायत ख़ौफ़नाक और बेरहम। इनसानी खाल में एक ख़ूँख़ार भेड़िया। दूर-दूर के क़बीलेवाले उसका नाम सुनकर काँप जाया करते थे। उसका दानव जैसा लम्बा-चौड़ा जिस्म था और उसका चेहरा भी बहुत डरावना था। उसका एक बड़ा ताक़तवर गरोह था जिसके साथ वह गाँवों को लूटा करता था। जंगलों में उसी का राज था। उसका भाला मौत का निशान था। अचानक ही वह जंगलों से निकलकर किसी बस्ती पर आ पड़ता और वह और उसका गरोह बस्ती को लूटकर बस्तीवालों को क़त्ल या ज़ख़्मी करके फिर जंगलों में चला जाता। गाँववाले उसके सामने बेबस थे। वे दिलेरू के गरोह के मुक़ाबले में बहुत ही कमज़ोर थे। कुछ दिनों बाद तो यह हालत हो गई कि दिलेरू के गरोह के आस-पास होने की झूठी ख़बर ही सुनकर गाँववाले अपने गाँव को छोड़कर भाग खड़े होते थे। सालों तक यही होता रहा। दिलेरू अपने गरोह के साथ जिस गाँव की तरफ़ जाता उसे वीरान ही पाता। न उसमें कोई चिराग़ रौशन मिलता और न कोई इनसान मिलता। उसे यह सोचकर ख़ुशी भी होती थी कि लोग उससे इस क़द्र डरते हैं।

वह फ़ख़्र से सीना फुलाकर कहता, "हर तरफ़ मेरी हुकूमत है। मैं ही इन इलाक़ों का शहंशाह हूँ। मैं एक ऐसा तूफ़ान हूँ जिसके आने से पहले ही बस्तियाँ वीरान हो जाती हैं।"

एक बार अँधेरी रात में दिलेरू और उसके साथी एक गाँव में दाख़िल हुए। वह गाँव भी वीरान और अँधेरा था। उन्होंने ठहरकर इधर-उधर नज़रें दौड़ाईं। फिर उन्होंने झोंपड़ियों को लूटकर उन्हें आग लगानी शुरू कर दी। घास के झोंपड़े धड़ाधड़ जलने लगे। दिलेरू के डरावने क़हक़हे फ़िज़ा में गूँज रहे थे। अचानक ही वह ख़ामोश हो गया। डाकुओं ने उसकी तरफ़ देखा। उसकी निगाहें सामने अँधेरे में एक तरफ़ किसी चीज़ को बड़े ग़ौर से देख रही थीं।

एक डाकू ने हैरत से सवाल किया, "क्या बात है सरदार?"

दिलेरू फिर भी ख़ामोश रहा। मशालों की रौशनी में उसकी आँखें अंगारे बरसा रही थीं।

"वह देख रहे हो?" उसने चिल्लाकर कहा और सामने उँगली उठा दी।

अब उन्होंने देखा। वह रौशनी का एक धब्बा-सा था। डाकू एक साथ बोले–

"रौशनी है। शायद किसी झोंपड़ी में चिराग़ जल रहा है।" दिलेरू का चेहरा और भी ख़ूँख़ार हो गया।

"कौन है वह जिसने दिलेरू के रास्ते में चिराग़ जलाने की हिम्मत की है? मैं जिस तरफ़ भी निकल जाता हूँ, बुझे हुए चिराग़ ही मिलते हैं। इस रौशन चिराग़ का मतलब है कि कोई ऐसा ज़रूर है जो मुझसे नहीं डरता। किसकी इतनी मजाल है जो दिलेरू के सामने चिराग़ जलाकर बैठा है?"

डाकू बोले, "हम अभी जाकर उस गुस्ताख़ को ख़त्म कर देते हैं।"

दिलेरू ने सख़्ती से कहा, "नहीं तुम सब यहीं ठहरो। चिराग़ जलानेवाले ने दिलेरू को ललकारा है। वह यक़ीनन बड़ा बहादुर ही होगा। बहुत दिनों से तमन्ना थी कि किसी बहादुर के साथ भाला आज़माई हो। मैं अकेला ही जाऊँगा।"

जब दिलेरू उस झोंपड़ी के क़रीब पहुँचा जिसमें चिराग़ जल रहा था, तो वह यह देख कर हैरान रह गया कि झोंपड़ी में एक औरत चटाई पर पड़ी कराह रही है। उसके पास ही एक छोटी-सी उम्र का लड़का बैठा हुआ है।

औरत कह रही थी– "तमाम गाँववाले जान बचाकर भाग चुके हैं, तू भी चला जा वरना दिलेरू तुझे मार डालेगा। वह बेरहम दरिंदा है, मेरे बच्चे!"

लड़का बोला– माँ तुमने मुझे जन्म दिया, अपना दूध पिलाया, पाल-पोसकर इतना बड़ा किया। क्या इसका बदला यही है कि मैं तुम्हें बीमार और मजबूर हालत में दिलेरू के रहमो-करम पर अकेला छोड़कर चला जाऊँ? मैं तुम्हारा बेटा हूँ, माँ तुम्हारा ही ख़ून इन रगों में दौड़ रहा है। मैं एक छोटा-सा कमज़ोर लड़का हूँ, मगर बुज़दिल नहीं। अगर वह भेड़िया अपने ख़ूँख़ार दरिन्दों के साथ इधर आ निकला तो मैं अकेला ही उससे लड़ूँगा। मेरे मरने के बाद ही वह तुम तक पहुँच सकेगा।

दिलेरू लड़के की बातों को सुनकर दंग रह गया। अभी तक तो लोग उससे गिड़गिड़ाकर ज़िन्दगी की भीख माँगते आए थे। मगर वह लड़का...!

आख़िर लड़के में इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई थी? दिलेरू को अपनी माँ की याद आ गई जो उसे छोटा-सा छोड़कर मर गई थी। उसकी प्यारी-प्यारी शक्ल दिलेरू को धुँधली सी याद थी। किस तरह वह ख़ुद भूखी रहकर उसका पेट भरती थी, और जब वह बीमार होता था तो रातों को जाग-जागकर उसकी देखभाल करती थी। एक दिन वह दुनिया से चली गई। वह अकेला रह गया। फिर धीरे-धीरे वह बुरे काम करने लगा और एक दिन वह डाकू बन गया— चिराग़ों को बुझानेवाला।

माँ की याद ने उसके अँधेरे दिल में एक चिराग़-सा जला दिया था। उसकी आँखों से दो आँसू निकलकर गिर पड़े। ज़िन्दगी में पहली बार दिलेरू की आँखों में आँसू आए थे, पहली बार पत्थर पिघला था।

बीमार औरत लगातार कहे जा रही थी—

"भाग जा बेटा, चिराग़ की रौशनी देखकर दिलेरू इस तरफ़ आ जाएगा और वह 'चिराग़' को बुझा देगा।"

अचानक दिलेरू झोंपड़ी के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। माँ और बेटे ने उसकी तरफ़ घबराकर देखा।

दिलेरू कहने लगा, "घबराओ नहीं, इस चिराग़ को बुझाने की ताक़त किसी में नहीं है। हज़ार दिलेरू भी इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इसे माँ के प्यार ने रौशन किया है। यह आँधियों से भी लड़ जाएगा। यह चिराग़ नहीं, सूरज है। इसकी रौशनी अँधेरों को मिटाने के लिए है। गाँव छोड़कर जाने की ज़रूरत नहीं। बेफ़िक्र होकर रहो। दिलेरू से न डरो, वह तो मर चुका है। अब इस गाँव की तरफ़ कभी कोई डाकू नहीं आएगा।

"तुम.....मगर तुम कौन हो?" लड़के ने पूछा। मगर जवाब देनेवाला तो जा चुका था। झोंपड़ी के बाहर सन्नाटा था। चारों तरफ़ अँधेरा था जिसमें वह चिराग़ रौशनी के मीनार की तरह रौशन था। उस रात के बाद से किसी ने दिलेरू और उसके गरोह का नाम तक नहीं सुना।

❀❀❀

उजालों का दूत

बहुत दिनों की बात है। किसी मुल्क में एक बादशाह हुकूमत करता था। उसने आस-पास के छोटे-छोटे मुल्कों पर चढ़ाई करके उनपर भी क़ब्ज़ा कर लिया था। दूर-दूर तक उसकी धाक बैठी हुई थी। उसका ख़ज़ाना हीरे, जवाहरात और सोने-चाँदी से भरा हुआ था। उसका आलीशान महल तो तामीर के फ़न का एक ऐसा बेमिसाल नमूना था कि देखते ही बनता था। पूरी इमारत क़ीमती पत्थरों से बनाई गई थी। गुम्बदों पर सोने के पत्तर चढ़े हुए थे जो दिन में सूरज की रौशनी में जगमगाते और चाँदनी रातों में झिलमिलाते रहते थे। महल के अन्दर लम्बे-चौड़े कमरों के दरवाज़ों पर रेशमी परदे सरसराते रहते थे।

गुलामों और नौकरों की भीड़ बादशाह की निगाहों के एक इशारे की मुन्तज़िर रहती थी। उसका हर हुक्म और हर ख़ाहिश घड़ी भर में पूरी हो जाती और उसकी फ़ौज ने तो बड़े-बड़े बादशाहों से उसकी ताक़त का लोहा मनवा लिया था। कौन था जो उसके सामने सिर उठाकर चलने की हिम्मत करता? दूर-दूर के मुल्कों से लाई हुई दौलत से उसने अपनी राजधानी को दुल्हन की तरह सजा रखा था। आलीशान इमारतें, लम्बी-चौड़ी सड़कें, भरे-पूरे बाज़ार, हरे-भरे बग़ीचे और उनमें बारह महीने रंगीन पानी बिखेरते हुए फ़व्वारे— हर तरफ़ बहार ही बहार थी।

मगर यह सब कुछ होते हुए भी बादशाह को एक बहुत बड़ा ग़म था। उसके कोई औलाद न थी। वह हर वक़्त यही सोचा करता— "मेरी यह लम्बी-चौड़ी सल्तनत, यह भरपूर ख़ज़ाना, यह शानदार महल, यह तख़्तो-ताज— आख़िर क्या होगा इन सबका? कौन मालिक बनेगा मेरे बाद इनका? मेरे बाद कोई मेरा नाम लेवा न रहेगा। अब तो ज़िन्दगी की शाम आ चली है, रात भी ऐसी ज़्यादा दूर तो नहीं है। इतना बड़ा महल जिसमें गुलामों और मुलाज़िमों की फ़ौज है, मेरे लिए सूना और किसी वीरान खण्डर की तरह है। मैं क्या करूँ? औलाद ख़रीदी भी तो नहीं जाती।"

एक दिन उसकी मायूसी का अँधेरा दूर हो ही गया। सल्तनत का वारिस पैदा हो गया। जिस-जिस ने उसे यह ख़ुशख़बरी सुनाई उसका मुँह मोतियों से भर दिया गया। सारे मुल्क में दौलत लुटाई गई। न जाने कितने दिनों तक जश्न मनाया जाता रहा और ख़ुशी की शहनाइयाँ बजती रहीं। दूर-दूर से लोग मुबारकबाद देने आते और इनाम व इकराम से मालामाल होकर लौटते। शाही कारिंदों को जागीरें दी गईं। हर तरफ़ ख़ुशियों का एक सैलाब-सा उमड़ आया था।

शहज़ादे की पहली सालगिरह नज़दीक आई तो बादशाह ने वज़ीर को बुलाकर कहा– "हमारा बेटा एक साल का होनेवाला है, हम चाहते हैं कि इस मौक़े पर पूरे शहर को सजाया जाए।"

वज़ीर ने कहा– "जो हुक्म।"

बादशाह कहता रहा– "और रात के वक़्त हर तरफ़ रौशनी हो।"

वज़ीर बोला– "बादशाह का हुक्म सिर आँखों पर।"

बादशाह कुछ देर सोचकर कहने लगा– "हमारे ज़ेहन में एक तज्वीज़ है।"

वज़ीर सिर झुकाए तजवीज़ सुनने का इंतिज़ार करने लगा। बादशाह ने कहा– "रात के वक़्त हम ख़ुद भेस बदलकर निकलेंगे और जिस घर में सबसे ज़्यादा और अच्छी रौशनी होगी, उसके मालिक को इनाम देंगे। मगर याद रहे कि शहर का कोई कोना ऐसा न रहे जहाँ रौशनी न हो। हर घर रौशनी से जगमगाता होना चाहिए।"

"ऐसा ही होगा।" वज़ीर बाअदब बोला।

अगले दिन ढिंढोरची ने पूरे शहर में एलान कर दिया– "ऐ शहर के वासियो! शहज़ादे की सालगिरह की रात को अपने घरों में चिराग़ाँ करो, फैला दो रौशनी को चारों तरफ़। जिस घर में सबसे ज़्यादा चिराग़ाँ होगा, वह शाही इनाम से मालामाल होगा।"

सालगिरह का दिन आ पहुँचा। शहर भर में किसी त्योहार का-सा माहौल था। लोगों ने अपने घरों को सजाया, नए-नए कपड़े पहने और मिठाइयाँ

बाँटी गईं। जब रात का वक़्त हुआ तो बादशाह ने वज़ीर से कहा— "अब हमें चलना चाहिए।"

"जो हुक्म," वज़ीर ने जवाब दिया।

वे भेस बदलकर महल से बाहर निकले। पूरा शहर दुल्हन बना हुआ था। हर आलीशान इमारत और हर कोने में झाड़फ़ानूस और काफ़ूरी शमाएँ रौशन थीं। छतों पर, दीवारों पर, ताक़ों में क़ंदीलें ही क़ंदीलें नज़र आती थीं ऐसा लगता था जैसे तारे आसमान से उतरकर नीचे ज़मीन पर चले आए हों।

शाही महल के बाद सबसे ज़्यादा आलीशान मकान वज़ीर का था। वज़ीर के हुक्म से उसमें ज़बरदस्त चिराग़ाँ किया गया था और उसको यक़ीन था कि इनाम उसी को मिलेगा।

बादशाह उसे देखकर ख़ुश हो गया। वज़ीर ने अदब से कहा— "यह इस ख़ादिम का मक़ान है।"

"ख़ूब! हम ख़ुश हुए, चिराग़ाँ बड़ा लुत्फ़ दे रहा है," बादशाह बोला।

वज़ीर ख़ुशी से झूम उठा। उसे इनाम पाने का यक़ीन हो गया। वज़ीर का मुक़ाबला भला कर भी कौन सकता था? वे आगे बढ़े।

वज़ीर ने बताया— "आलीजाह! यह सेनापति का मकान है।"

बादशाह कह उठा— "वाह-वाह! ज़रा देखो तो दरो-दीवार से रौशनी के सोते फूट रहे हैं।"

वज़ीर ने एक और इमारत की तरफ़ उँगली उठाई।

"आलम पनाह! यह शहर के क़ाज़ी का मकान है।"

बादशाह ने बेइख़तियार कहा— "शाबाश! हमारे हाकिम हमारे कितने वफ़ादार हैं और किस तरह हमारा हुक्म सिर आँखों पर रखते हैं। क़ाज़ी साहब तो जैसे आसमान से तारा ही तोड़ लाए हैं और उन्हें जड़ दिया है दरो-दीवार में।"

वज़ीर ने इशारा किया— "और ज़रा उस इमारत की तरफ़ भी नज़र फ़रमाइए, शहर के मशहूर सौदागर की मिलकियत है।"

बादशाह ख़ुशी से झूमते हुए कहने लगा– "ऐसा लगता है, जैसे उसने यह इमारत ईंट-पत्थर के बजाए रौशनी से बनाई है।"

इसी तरह वे एक-एक इमारत को ग़ौर से देखते रहे। बादशाह हर इमारत को देखकर हैरत कर रहा था। लोगों ने दिल खोलकर चिराग़ाँ किया था, और क्यों न करते? बादशाह का इनाम जो मिलनेवाला था, और इनाम पानेवाले का मालामाल हो जाना यक़ीनी था। हर दिल में बस यही तमन्ना थी कि इनाम मुझे ही मिल जाए।

वे दोनों धीरे-धीरे सड़क पर चलते रहे। शहर गोया तारों-भरा आसमान बन गया था। कुछ इमारतों में तो इतने बड़े-बड़े हण्डे रौशन थे कि उनकी रौशनी से आँखें चौंधिया रही थीं, उनपर निगाह नहीं ठहर रही थी।

अब वे शहर के आख़िरी सिरे पर पहुँचे थे। रौशन मकानों का सिलसिला ख़त्म हो रहा था, आगे अँधेरा था। बादशाह ने कहा– "अब तो हम तमाम मकान देख चुके हैं। आबादी यहाँ ख़त्म होती है। वापस चलना चाहिए– मगर ठहरो..... यह क्या?"

वह कहते-कहते चौंक पड़ा।

"कैसी रौशनी है! वह?"

वज़ीर भी चौंक पड़ा। दोनों आगे बढ़े– और उन्होंने देखा कि सड़क के किनारे एक टूटी-फूटी सी झोंपड़ी थी जिसके दरवाज़े पर एक बूढ़ी औरत बैठी थी। उसके सामने सड़क के किनारे मिट्टी का एक नन्हा-सा चिराग़ ज़मीन पर रखा टिमटिमा रहा था। झोंपड़ी के अन्दर अँधेरा ही अँधेरा था। वे बूढ़ी औरत के नज़दीक चले आए। बादशाह का चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया, "चिराग़ाँ की रात को अँधेरी झोंपड़ी!"

उसने पूछा, "कौन है तू?"

"एक बूढ़ी बेवा!"

"यह तेरी ही झोंपड़ी है?"

"हाँ!"

बादशाह का ग़ुस्सा बढ़ता ही जा रहा था। उसने कड़ककर कहा– "जानती है कि आज शहर में क्या हो रहा है?"

वह पोपले मुँह से हँसती हुई बोली, "चिराग़ाँ हो रहा है।"

"वजह भी जानती है?"

"शहज़ादे की सालगिरह है।"

बादशाह ने बिगड़कर कहा– "क्या तूने शाही एलान नहीं सुना?"

"सुना था!"

"क्या सुना था?"

"सारे शहर में रौशनी होगी। हर घर में चिराग़ाँ होगा और जिस घर में चिराग़ाँ सबसे अच्छा होगा, उसे शाही इनाम से नवाज़ा जाएगा।"

बादशाह दहाड़ा–

"फिर तूने झोंपड़ी को अँधेरी रखने की गुस्ताख़ी कैसे की?"

बूढ़ी ने सादगी से कहा– "सुनो बेटा, मैं नहीं जानती तुम कौन हो, फिर भी तुम्हें बताती हूँ। तुमने देखा ही होगा कि हर घर में रौशनी भरी हुई है। क़ीमती पत्थरों से बनी शानदार इमारतें रौशनी में नहा रही हैं, शाही इनाम की ख़ातिर। मगर तुमने एक चीज़ और भी तो देखी होगी।

बादशाह और वज़ीर ने एक साथ पूछा– "वह क्या?"

बुढ़िया ने कहा– "तुम देखते भी कैसे? तुम्हारी निगाहें तो चिराग़ाँ पर थीं।"

बादशाह झुंझलाकर बोला– "पहेलियाँ क्यों बुझवा रही है? सीधी तरह बात क्यों नहीं बताती।"

बूढ़ी ने नर्म आवाज़ से कहा– "तुमने घरों के उजाले तो देखे मगर सड़क के अँधेरे नहीं देखे। इनाम की तमन्ना में डूबे हुए लोग घरों को रौशन करने में ऐसे खोए कि किसी को इस बात का होश न रहा कि सड़क अँधेरी है, वह सड़क जिन पर से छोटा-बड़ा, अमीर-ग़रीब, हर इनसान गुज़रता है।"

बादशाह और वज़ीर हैरत के साथ बुढ़िया की बात सुन रहे थे।

"मैंने सोचा सड़क पर अँधेरे में लोग ठोकर खाएँगे, मगर मैं क्या करती? मेरे पास हंडे और क़ंदीलें कहाँ? वे तो सब बड़े-बड़े घरों में रौशन हैं। मेरे पास तो ले-देकर बस एक मिट्टी का चिराग़ ही था। मैंने सोचा कि चलो इसको सड़क के किनारे लाकर रख दूँ। झोंपड़ी तो अँधेरी हो जाएगी, मगर रास्ते पर थोड़ा-सा तो उजाला हो जाएगा।"

बादशाह के दिल में आँधियाँ-सी उठ रही थीं, दिमाग़ में ज़लज़ले आ रहे थे। वज़ीर ग़ुस्से से कह रहा था— "क्या तू नहीं जानती थी कि तूने बादशाह के हुक्म की नाफ़रमानी की है?"

बुढ़िया मुस्कराकर बोली— "मगर 'उसके' हुक्म की नाफ़रमानी तो नहीं की जिसने इसी मक़सद के लिए चाँद और सूरज के चिराग़ को जलाए हैं!"

वज़ीर ग़ुस्से से भिन्ना गया— "चोरी और सीना ज़ोरी! हमसे बातें बनाती है, तूने जुर्म किया है!"

बादशाह ने कपकपाती हुई आवाज़ में कहा— "जुर्म इसने नहीं, बल्कि हमने, तुमने और इन तमाम चिराग़ाँ करनेवालों ने किया है।"

वज़ीर ने हैरत से बादशाह के चेहरे की तरफ़ देखा। उसकी आँखों में दो सितारे झिलमिला रहे थे जिनमें चिराग़ाँ का अक्स झलक रहा था। बादशाह कह रहा था—

"शहर के सारे हंडे-क़ंदीलें महलों और ऊँची इमारतों के लिए हैं। इनके झाड़-फ़ानूसों की चमक-दमक उनकी चहारदीवारी में क़ैद है। इनकी रौशनियाँ इनाम के लालच की बुनियादों पर बिखरी हुई हैं— और ये चिराग़ नहीं बल्कि रौशनी का वह मीनार है जो अँधेरी रातों में तूफ़ानी समुद्रों में घिरे हुए जहाज़ों को ख़तरों से आगाह करके बंदरगाहों तक पहुँचाता है। तुम इसका मक़ाम क्या समझ सकते हो? यह तो इस क़ाबिल है कि इसको ख़ाक से उठाकर सितारों के बीच रख दिया जाए तो इस वक़्त तमाम सितारे उसके सामने फीके पड़ जाएँगे। सूरज भी उसकी चमक देखकर शरमा जाएगा। मैंने शहर का चिराग़ाँ देखा, इमारतों में रौशनी के सैलाब देखे, मगर इस चिराग़ के

सामने किसी हंडे की कोई अहमियत नहीं। यह इनसानियत के लिए रौशन किया गया है। इसे तो सिर-आँखों पर रखना चाहिए, और सुनो! मेरे ख़ज़ाने की तमाम दौलत भी उसकी रौशनी का इनाम नहीं हो सकती। ज़रा नज़र उठाकर देखो तो आसमान की तरफ़। ख़ुदा-ए-बरतर ने लाखों चिराग़ जला रखे हैं। अपने घर में उजाला करने के लिए नहीं, बल्कि राह दिखाने के लिए। मुबारक हैं वे लोग जो उसके बन्दों को उजाला पहुँचाने के लिए अपने घरों के चिराग़ भी उठाकर बाहर रख देते हैं। वह जो दूसरों के दुख महसूस करके उन्हें दूर करने की कोशिश करते हैं, हक़ीक़त में उसके प्यारे बन्दे हैं। बड़ा वह नहीं जो लाल पत्थर से अपने लिए महल बनाता है, बल्कि बड़ा वह है जो रास्ते में पड़ा हुआ पत्थर हटा देता है, ताकि लोग ठोकर न खाएँ।"

वज़ीर चुपचाप खड़ा बादशाह की बात सुन रहा था। बुढ़िया का नन्हा-सा मिट्टी का चिराग़ बिलकुल अकेला अँधेरों से लड़ रहा था। वह उजालों का दूत था और दूर शहर की इमारतों में जलनेवाले लालच और ख़ुदग़र्ज़ी के हंडे, झिलमिल करते झाड़-फ़ानूस, बुढ़िया के बेक़ीमत चिराग़ के सामने बौने से लग रहे थे।

वज़ीर सारी बात समझ गया था।

दोनों अपना सिर झुकाए वापस लौट आए।

बड़ा आदमी

एक बहुत बड़ा बादशाह था। उसकी सल्तनत की सरहदें सैकड़ों मील तक फैली हुई थीं। उसका बाप एक छोटा-सा मामूली बादशाह था। बाप के मरने के बाद जब उसके सिर पर ताज रखा गया तो उसने क़सम खाई कि एक दिन वह इतना बड़ा बादशाह बनकर दिखाएगा कि सारी दुनिया में उसके नाम की धूम मच जाएगी। उसने एक बहुत-बड़ी फ़ौज तैयार की जिसमें बड़े-बड़े नामवर बहादुरों को शामिल किया। उसकी फ़ौज में वे बहादुर भी शामिल थे जो बर्फ़ से ढके पहाड़ों में रहते थे और वे सूरमा भी जो तपते हुए रेगिस्तान में ऊँट पर बैठकर भालों से जंग करते थे

वह जिस तरफ़ भी अपनी फ़ौज लेकर निकल पड़ता, अपनी फ़तह के झंडे गाड़ता चला जाता। हर मोरचे पर कामयाबी उसके क़दम चूमती और वह दूर-दूर के मुल्कों से दौलत समेटकर अपने ख़ज़ाने भरता रहता।

फिर उसने एक आलीशान महल बनवाया। उसकी दिली तमन्ना थी कि महल ऐसा हो जिसकी मिसाल न मिले। इसलिए दूध जैसे संगमरमर से महल बनाया गया था, जिसकी सुनहरी मीनारें नीले आसमान से बातें करती थीं। छतों में अन्दर की तरफ़ क़ीमती जवाहिरात जड़े हुए थे जो रात को मोमी शमाएँ जलने पर जगमगाने लगते थे।

अब तो उसके घमंड का कोई ठिकाना न था। अब वह चाहता था कि लोग उसे बड़ा समझें—सबसे बड़ा। "कौन है जो इस वक़्त मुझसे भी बड़ा है?" वह घमंड से सीना फुलाकर कहता, "किसके पास मुझसे ज़्यादा दौलत है? आओ, देखो मेरी ज़बरदस्त फ़ौज, मेरा ख़ज़ाना, मेरा आलीशान महल और बताओ क्या मैं सबसे बड़ा बादशाह नहीं हूँ?"

दूर-दराज़ मुल्कों से लोग आते और गीत गाते— बादशाहत की बड़ाई के, उसके ख़ज़ाने के और संगमरमर के महल के।

बादशाह ने रिआया को महल में आने की खुली इजाज़त दे रखी थी, ताकि सबपर उसकी दौलत और बड़ाई का रोब पड़े। लोग सैकड़ों की तादाद

में महल को देखने आते थे। सुबह सवेरे से लेकर शाम को चिराग़ जलने तक लोगों की भीड़ और लाइनें लगी रहतीं। शायद उसके शहर में कोई आदमी न बचा था जिसने महल न देखा हो।

"क्या कोई ऐसा भी है जो हमारा महल देखने न आया हो?" बादशाह ने एक दिन वज़ीर से पूछा।

"सभी आ चुके हैं! जहाँपनाह, सिवाय एक बूढ़े के जो शहर की फ़सील (चार दिवारी) के बाहर एक झोंपड़ी में रहता है। सुना है वह बड़ा विद्वान है, न किसी से कुछ माँगता है, न किसी के आगे सिर झुकाता है। वह ख़ुद को बहुत बड़ा आदमी समझता है।" वज़ीर ने जवाब दिया।

बादशाह को उस बूढ़े से मिलने की ख़ाहिश हुई और वह उसकी टूटी-फूटी झोंपड़ी पर जा पहुँचा। रात हो चली थी। झोंपड़ी में मिट्टी का चिराग़ जल रहा था और बूढ़ा चटाई पर बैठा था।

"मैं बादशाह हूँ।" बादशाह ने कहा।

"मुझसे क्या काम है?" बूढ़े ने पूछा।

बादशाह ने शिकायत करते हुए कहा– "सब लोग मेरा महल देखने आ चुके हैं, सिवाय तुम्हारे। इतना ग़ुरूर क्यों?"

बूढ़ा बोला– "ग़ुरूर! ग़ुरूर तो दौलत और ताक़त पर होता है। मेरे पास तो इनमें से कुछ भी नहीं। तुम्हारे महल में ऐसी क्या ख़ास बात है जो मैं उसे देखने जाऊँ?"

"उसकी छत में हीरे, जवाहिरात जड़े हुए हैं।" बादशाह ने अकड़कर बताया। बूढ़ा उठकर बाहर आया और आसमान की तरफ़ हाथ उठाकर बोला, "यह मेरा महल है। देखो इसकी छत में कितने हीरे जवाहिरात हैं। संगमरमर के महल में सिर्फ़ तुम रहते हो, मगर मेरे महल में करोड़ों इनसान, चरिन्द-परिन्द और कीड़े-मकोड़े रहते हैं। देखो अगर तुम बड़ा बनना चाहते हो तो महल बनवाने और ख़ज़ाने की नुमाइश करने के बजाय दूसरों की भलाई के काम करो। एक बादशाह को यह शोभा नहीं देता कि– "वह नादानी और घमण्ड की बातें करे।"

बादशाह पर बूढ़े की बातों का बहुत असर हुआ और अगले दिन से ग़रीबों और मुहताजों को अपनी दौलत ख़ैरात करने लगा। उसके महल के सामने ज़रूरतमन्दों की भीड़ लगी रहने लगी।

एक दिन वह फिर बूढ़े के पास गया और बोला– "काफ़ी दौलत ख़ैरात करने लगा हूँ, क्या अब मैं सबसे बड़ा आदमी हो गया हूँ?"

"कल दोपहर को मामूली कपड़ों में मेरे पास आओ।" बूढ़े ने जवाब में कहा। अगले दिन बादशाह आम आदमी के भेस में आया।

"मेरे पीछे चले आओ।" बूढ़े ने एक तरफ़ चलते हुए कहा।

दोपहर का वक़्त था। सख़्त गरमी थी। दोनों जंगल में पहुँच गए। जंगल में एक झोंपड़ी थी, जिसमें एक चरवाहा बैठा था। उसके हाथ में एक रोटी थी। उन्हें देखकर वह उठ खड़ा हुआ और उनका स्वागत किया।

"भूख लगी है, कुछ खाने को मिलेगा?" बूढ़े ने उससे पूछा।

चरवाहे ने वही रोटी उनकी तरफ़ बढ़ा दी।

बूढ़े ने बादशाह से कहा, "यह चरवाहा बहुत बड़ा आदमी है।"

वह कैसे?" बादशाह ने हैरत से पूछा।

"उसके पास एक ही रोटी थी जो उसने हमें दे दी और ख़ुद भूखा रहेगा। तुम अपने ख़ज़ाने में से ग़रीबों को देते हो और वह भी इसलिए कि लोग तुम्हें बड़ा समझें। जिस दिन तुम्हारे पास सिर्फ़ एक ही रोटी हो और वह तुम किसी भूखे को दे दो तो मुझे बताना। मैं तुम्हें बड़ा आदमी मान लूँगा। अभी तो तुम एक घमंडी इनसान के सिवा और कुछ भी नहीं हो।"

बादशाह का सिर शर्म से झुक गया। उसकी नज़रें चरवाहे की तरफ़ उठीं। उसे महसूस हुआ जैसे चरवाहा बहुत बड़ा हो गया हो। शहर की चारदीवारी से भी ऊँचा, उसके महल के मीनारों से भी बुलन्द और ख़ुद को वह उसके सामने सिर्फ़ एक बौना महसूस करने लगा।

❀❀❀

सबसे अच्छा खेल

रहमत अली एक इज़्ज़तदार आदमी थे। गाँव के मुखिया थे। घर की ज़मींदारी भी थी। खाते-पीने आदमी थे, लोग उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। शाम के वक़्त उनके यहाँ शरीफ़ लोग जमा होते, मूँढों पर बैठकर हुक़्क़ा पीते और गाँव के मामलात और हालात पर बातचीत होती। जहाँ तक बस में होता रहमत अली गाँववालों की मदद करते। कभी पैसे से और कभी ज़बानी हमदर्दी से। इसी वजह से गाँव में उनका एक ख़ास मक़ाम था।

एक शाम हमेशा की तरह उनके यहाँ लोग इकट्ठा थे। बातें हो रही थीं कि चन्दू बाग़बान दुहाई देता हुआ आया—

"मुखिया जी मैं बरबाद हो गया। लड्डन मियाँ और उनके साथियों ने मेरे बाग़ में तबाही मचा दी।"

"क्या हुआ?" उन्होंने पूछा

उसने बताया— "आज दोपहर पूरी टोली बाग़ में आम माँगने आई। मैंने मना किया तो उन्होंने पेड़ों की टहनियों को हिला-हिलाकर सैकड़ों अधपके आम गिरा दिए। मेरा बड़ा नुक़सान हो गया।"

अभी उसकी बात ख़त्म भी न हुई थी कि धीरू लकड़हारा सिर पकड़े कराहता हुआ आ पहुँचा। उसके सिर से ख़ून बह रहा था।

"हाय मर गया मुखिया जी!"

"तुझे क्या हो गया?" रहमत अली ने पूछा।

धीरू ने जवाब दिया— "मैं लकड़ियाँ काटकर ला रहा था। रास्ते में लड्डन मियाँ और उनके साथियों ने घेर लिया और लगे पत्थर बरसाने। मेरी लकड़ियों का गट्ठर भी छीन लिया।"

"चंदू तेरा नुक़सान मैं पूरा करूँगा। धीरू, तू सिर में हकीम जी से दवा लगवा ले, और यह ले कुछ रुपये।"

"आख़िर आप कब तक यह नुक़सान भरते रहेंगे? लड्डन मियाँ का

किरदार बिगड़ता जा रहा है।" वहाँ बैठे हुए लोगों ने एक आवाज़ में कहा।

रहमत अली सिर्फ़ ठण्डी साँस भरकर रह गए। लड्डन मियाँ उनके इकलौते बेटे थे। सालों की मन्नतों और मुरादों के बाद पैदा हुए थे, इसलिए लाड़-प्यार का ठिकाना न था। अनपढ़ बीवी के हाथों न तो लड्डन मियाँ की पढ़ाई हो पाई और न ठीक से तरबियत। बस वे बिगड़े हुए हाथी बन गए। जिधर से भी गुज़रते, तबाही मचा देते। बाप नुक़सानों की तलाफ़ी भी और करते। लोगों के सामने शर्मिन्दा भी होते।

हर तरह समझा-बुझाकर देख लिया। डराया धमकाया, सज़ाएँ दीं, इनाम का लालच दिया मगर बेटे को न सुधरना था, न सुधरा। बाप तो सुधारने की कोशिश भी करते, लेकिन माँ उनकी ग़लत हरकतों पर कभी टोकती भी नहीं, बल्कि उल्टे उनके हाथों सताए जानेवालों को ही बुरा-भला कहतीं।

"झूठी शिकायतें लेकर आते हैं, नामुराद। जलते हैं मेरे लाल से।" इस तरह लड्डन मियाँ को और बढ़ावा मिल जाता।

पूरा गाँव परेशान था। अगर वे मुखिया के बेटे न होते तो गाँव का कोई आदमी उनकी खाल उधेड़ देता। न जाने क्या मज़ा आता था उन्हें दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाने में। लोग जितनी ज़ोर से कराहते वे उतना ही तेज़ क़हक़हे लगाते थे। उनकी शरारतें सिर्फ़ दूसरों के दिल दुखाने के लिए ही हुआ करती थीं। वे जानवरों और परिन्दों तक को तकलीफ़ पहुँचाने से बाज़ नहीं आते थे। किसी की भैंस दलदल में धकेल देते, किसी बकरी की टाँग तोड़ देते, परिन्दों पर ढेले बरसाते और ज़ोर-ज़ोर से हँसते, जैसे कोई दिलचस्प खेल खेल रहे हों।

लेकिन सबसे ज़्यादा मज़ा तो उन्हें सल्लू को सताने में आता था। सल्लू एक अन्धा-बूढ़ा था जो अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहता था। उसका कोई न था। गाँववाले ही खाने को कुछ दे जाते और कोई उसके घड़े में पानी भर जाता।

लड्डन मियाँ और उसकी टोली कभी उसके खाने की प्लेट उठाकर फेंक देते, कभी घड़ा फोड़ देते, कभी झोंपड़ी में गोबर लाकर डाल देते, कोई उसके

सिर पर चपत लगाता, कोई धक्का देता और कोई कंकरियाँ मारता।

सल्लू रोता हुआ कोसता और बुरा-भला कहता तो वे सब मिलकर और भी ज़ोर से क़हक़हे लगाते। उन्हें बड़ा मज़ा आता था।

एक शाम वे सब मिलकर सोच रहे थे कि आज कौन-सा खेल खेलें? कोई नई क़िस्म का खेल खेलें।

सभी अपनी-अपनी राय दे रहे थे—

"चलो, भीकू कुम्हार के घर पर पत्थराव करें।"

"नहीं, छिद्दा ख़ाँ के छप्पर में आग लगाएँ।"

"जुमिया धोबन के बैल को जंगल में हाँक आएँ।"

"अरे सल्लू की झोंपड़ी का छप्पर तोड़ने में बहुत मज़ा आएगा।"

लड्डन मियाँ ख़ामोश थे।

"क्या बात है?" साथियों ने पूछा, "तुम चुप क्यों हो?"

"आज हम दूसरी क़िस्म का खेल खेलेंगे।" लड्डन मियाँ ने कहा, "चलो सल्लू की झोंपड़ी की तरफ़।"

"अरे हाँ" किसी ने कहा "सल्लू किसी के घर गया है, झोंपड़ी अकेली है। जी भर कर तोड़-फोड़ मचाएँगे। जब वह आएगा तो सिर के बाल नोचेगा।"

लड्डन मियाँ बोले— "नहीं, आज हम कुछ और करेंगे। आओ, मेरे साथ। न जाने क्यों दिल चाहता है आज किसी दूसरी क़िस्म का खेल खेलें। सिर्फ़ खेल में बदलाव की ग़रज़ से ही सही। आज अच्छाई की लज़्ज़त का भी अन्दाज़ा करके देख लें।"

वे झोंपड़ी में दाख़िल हुए। सबसे पहले उन्होंने झोंपड़ी की सफ़ाई की, फिर कुम्हार के यहाँ से कोरा घड़ा लाकर पानी भर दिया, क्योंकि पुराने घड़े में से पानी टपकता था। फिर वे झपट कर अपने-अपने घरों से खाना ले आए और उसकी प्लेट और प्याले को भर दिया।

इसके बाद वे झोंपड़ी के बाहर ही बैठ गए। साथियों को अब भी हैरानी

थी कि लड्डन मियाँ आज यह कौन-सा खेल खेल रहे हैं?

इतने में सल्लू लाठी टेकता हुआ आया। झोंपड़ी में दाख़िल होते ही उसने अपने पैरों से कुछ महसूस किया।

"झोंपड़ी में सफ़ाई किसने की है? अरे! और...खाने के बरतन...शायद भरे हुए हैं...खाना है! और...हाँ, मेरे हाथ महसूस कर रहे हैं...यह घड़ा नया है...पानी भरा हुआ है...यह सब क्या ख़्वाब है? किसको तरस आ गया इस अन्धे पर...? ऐ ख़ुदा, तूने मुझपर तरस खाकर अपने फ़रिश्तों से यह सब कराया होगा—खाना, पानी—और इस अन्धे के लिए! जिसने भी मेरे साथ ऐसा सुलूक किया है, ऐ ख़ुदा उसे ज़िन्दगी की सारी ख़ुशियाँ नसीब हों, वह फले-फूले। काश, मैं अपने ऊपर एहसान करनेवाले का चेहरा देख सकता! वह ज़रूर चाँद की तरह दमकता होगा।"

ये बातें सुनकर लड्डन मियाँ की आँखें आँसुओं से भर आईं।

सथियों ने लड्डन मियाँ से कहा— "तुम रो रहे हो? तुम्हारी आँखों में आँसू?"

लड्डन मियाँ बोले, "बहने दो इन्हें। ये सच्ची ख़ुशी के आँसू हैं। किसी भी खेल ने आज तक मुझे इतनी ख़ुशी और इतना सूकून नहीं दिया है। सच्चा लुत्फ़ सुख देने से मिलता है, और सुनो! आज के बाद से हम सिर्फ़ इसी क़िस्म के खेल खेला करेंगे।"

सभी साथियों के एहसासात भी लड्डन जैसे ही थे।

अपने हक़ में दुआएँ लड्डन मियाँ ने पहली बार सुनी थीं। भलाई के लफ़्ज़ उनकी ज़िन्दगी की अँधेरी राहों में चिराग़ जला गए। काँटों में पहली बार फूल मुस्कराए। बुराई की घटा-टोप अँधेरी रात में रुपहली चाँदनी बिखर गई। भलाई की लज़्ज़त को उन्होंने पहली बार महसूस किया था।

निगहबान

बहुत दिनों की बात है, एक छोटा सा-गाँव था। गाँव के लोग ज़्यादातर किसान थे। ये वे लोग थे, जिनके पास या तो अपनी ज़मीन थी या किसी ज़मींदार की ज़मीन पर खेती करते थे और उसे लगान अदा करते थे। किसानों की ज़िन्दगी बड़ी मेहनत की थी। जाड़ों की ठिठुरी हुई सुबह हो या गर्मियों की आग बरसाती दोपहर या मूसलाधार बारिश, उन्हें अपने खेतों पर पसीना बहाना ही पड़ता था। हल जोतना, बीज बोना, सिंचाई करना, निराई करना, फ़सल को जानवरों और पक्षियों से बचाना, फ़सल काटना— मतलब यह कि साल में बारहों महीने कोई न कोई काम लगा ही रहता था। हल और बैल लेकर सुबह तड़के वे खेतों की तरफ़ निकल जाते और शाम को धुँध लगे गहरा अन्धेरा होने पर थके-माँदे वापस लौटते। खा-पीकर चौपाल पर सब इकट्ठा होते। हुक़्क़ा गुड़-गुड़ाते, गाँव के हालात पर बातचीत होती और जब रात ज़्यादा बीत जाती, माहौल में ख़ामोशी छा जाती और कुत्तों और गीदड़ों की आवाज़ें सुनाई देने लगतीं तो वे अपने-अपने घरों में जाकर सो जाते। सैकड़ों साल से ज़िन्दगी इसी डगर पर चलती आ रही थी। कुछ लोग जो खेती न कर सकते थे, वे भेड़-बकरियाँ चराते और चरवाहे कहलाते थे। किसान और चरवाहे सभी ग़रीब लोग थे। उनके घर मिट्टी के बने हुए थे जिनकी छतें फूस-पताई वग़ैरा की थीं। सिर्फ़ ज़मींदार का मकान पक्का बना हुआ था। ज़मींदार ही गाँव का मुखिया भी था। गाँव में कोई काम उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ या उसकी इजाज़त के बग़ैर नहीं हो सकता था।

गाँव से दो मील दूर पश्चिम की तरफ़ एक टीला था, सुनसान और वीरान। टीले के पीछे से ही वह घना जंगल शुरू हो जाता था जो सैकड़ों एकड़ के एक बड़े इलाक़े में फैला हुआ था। उसमें इतने ज़्यादा पेड़ और झाड़ियाँ थीं कि दिन में भी अँधेरा रहता था। वह जंगली जानवरों और लुटेरों का अड्डा था। गाँववाले भी आमतौर पर जंगल के अन्दर जाने से बचते थे। लकड़हारे भी जंगल के बाहर से ही लकड़ियाँ काट लाया करते थे। गाँव में तालीम की रौशनी न पहुँच सकी थी। इसलिए वहाँ जिहालत के अँधेरे बहुत

गहरे थे। जिहालत हज़ारों क़िस्म के ग़लत अक़ीदों और रस्मों को फलने-फूलने का मौक़ा देती है। गाँव के लोग भी अनगिनत वहमों और पुराने रिवाजों के ग़ुलाम थे। वे उन्हें सिर्फ़ इस वजह से जारी रखे हुए थे कि उनके बुज़ुर्ग सदियों से उन्हें मानते चले आ रहे थे। इन अक़ीदों और रस्मों ने ख़ुद उनकी ज़िन्दगियों में कितना ज़हर घोल रखा था इसका अन्दाज़ा उन्हें था ही नहीं, न ही उन्होंने कभी इस बात पर सोच-विचार करने की ज़रूरत समझी।

उस गाँव में अब्दुल नाम का एक चरवाहा रहता था। वह छोटी-सी झोंपड़ी में अपनी बीवी और आठ-दस साल की बच्ची के साथ रहता था। उसके पास चार गाएँ थीं। उनका दूध गाँववालों के हाथ बेचकर वह अपना और अपनी बीवी-बच्ची का पेट पालता था।

एक दिन अचानक अब्दुल बीमार पड़ा और अगले दिन इस दुनिया से चल बसा। उसके कुछ दिन बाद ही उसकी बीवी भी अल्लाह को प्यारी हो गई तीन गाएँ भी देखते ही देखते मर गईं।

बेचारी बच्ची जिसका नाम चुन्नी था, इस दुनिया में बिलकुल अकेली रह गई। होना तो यह चाहिए था कि लोग उस यतीम को सहारा देते, उसका दिल जीतने की कोशिश करते, उसके सिर पर हाथ रखते। मगर हुआ इसका बिलकुल उलटा। लोग चौपाल पर जमा हुए और अब्दुल और उसकी बीवी की मौत पर बात करने लगे।

मूँछोंवाला क़ुरबान बोला— "ख़ुदा का क़हर टूटा है अब्दुल और उसकी बीवी पर। गुनाहों की सज़ा में दोनों को मरना पड़ा है।"

बूढ़ा शबराती खाँसता हुआ कहने लगा— "माँ-बाप की मौत की वजह वह लड़की चुन्नी है। याद नहीं उसकी पैदाइश जिस रात हुई थी उस रात चाँद ग्रहण पड़ा था? वह अभागिन है, माँ-बाप को खा गई।"

"हाँ, हाँ", सबने सिर हिलाए, "हमें याद है, तुम ठीक ही कहते हो, लड़की अभागिन है।"

एक बोला— "बस्ती में अगर एक भी मनहूस और अभागिन हो तो बलाएँ उतरती हैं और पूरी बस्ती उनकी चपेट में आ जाती है।"

"बात तो ठीक है!" मुखिया ने कहा, "फिर तुम क्या चाहते हो?"

"उसे बस्ती से निकाल दो", सबने एक साथ कहा।

गाँव में एक दीवाना-सा आदमी भी रहता था। उसका न कोई घर-बार था, न कोई रिश्तेदार। सारा दिन वह जंगलों में मारा-मारा फिरता और शाम को किसी के भी दरवाज़े पर आकर पड़ा रहता और वहीं जो कुछ मिल जाता, खा लेता। वह उस गाँव का रहनेवाला भी न था, बल्कि कहीं से घूमता-घामता आया था और फिर मुस्तक़िल तौर पर वहीं रहने लगा था। वह हमेशा अपनी ही धुन में मगन रहा करता था। कभी मुँह ही मुँह में बड़बड़ाता और कभी क़हक़हे लगाने लगता। उस वक़्त वह भी चौपाल के एक कोने में बैठा गाँववालों की बातें सुन रहा था। जब लोगों ने लड़की को गाँव से निकालने की बात की तो वह ज़ोर से हँस पड़ा।

"उसे बस्ती से निकाल दो। वह अभागिन है।" वह हँसते हुए बोला, "क्योंकि उसके माँ-बाप मर गए हैं और वह चाँद ग्रहण के वक़्त पैदा हुई थी। बहुत बड़ा जुर्म है? और फिर चाँद ने यह बात तुम्हारे कान में कह दी कि लड़की अभागिन है? भला बताओ, अगर यह ग्रहण से दो-चार घड़ी आगे-पीछे पैदा हो जाती तो बदक़िस्मती से नजात पा जाती और हाँ, अगर तुम और तुम्हारी बीवियाँ मर जाएँ तो अपनी औलादों को भी गाँव से निकाल देना, वरना गाँव पर बलाएँ टूट पड़ेंगी, समझे?"

लोग नागवारी से चिल्लाए– "अरे यह यहाँ कहाँ से आ मरा?"

"पागल है!" "निकालो यहाँ से।"

और चुन्नी को गाँव से निकाल दिया गया। वह अपनी इकलौती गाय की रस्सी थामे फूट-फूटकर रो रही थी। उसकी समझ में नहीं आता था कि कहाँ जाए?

इतने में वही पागल उस तरफ़ आ निकला और उसे देखकर बोला– "रो रही है?"

"हाँ बाबा! इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में मेरा कहाँ ठिकाना है! कहाँ जाऊँ मैं?"

"हर जगह तेरा ठिकाना है।" वह बोला। "नीले आसमान की यह छत तेरी ही है बेटी!"

"मगर मैं भूखी मर जाऊँगी।" चुन्नी ने सिसकते हुए कहा।

"क्या आज तक तू कभी भूखी रही है?" पागल ने सवाल किया। फिर बोला, "मेरे पीछे चली आ।"

चुन्नी गाय को लेकर उसके पीछे चल पड़ी।

पागल उसे लेकर उसी टीले पर जा पहुँचा जहाँ किसी ज़माने की एक झोंपड़ी खड़ी थी। ऊँचा, नीचा, कच्चा फ़र्श, गिरती हुई दीवारें और जगह-जगह से टूटा हुआ छप्पर— शायद कभी कोई चरवाहा रहता रहा होगा उसमें।

वह पागल बोला, "ले बेटी, यहाँ तू इत्मीनान से रह। यहाँ से तुझे कोई नहीं निकालेगा।"

चुन्नी हैरत से झोंपड़ी को देखकर बोली "बाबा, मैं यहाँ अकेली रहूँगी? इस वीराने में, रात के अँधेरों में डर न लगेगा?"

वह हँस पड़ा। बोला— "बेटी, दुनिया में अकेला कोई है ही नहीं। रहा अँधेरों का सवाल तो ये नुक़सान देनेवाला नहीं। ख़तरनाक अँधेरा तो उस गाँव में है जहाँ से तुझे निकाल दिया गया है, तू यहाँ रह। गाय का दूध गाँव में जाकर बेच दिया कर, तू भूखी न रहेगी।" और यह कहकर वह चला गया।

चुन्नी उस दिन के बाद से गाँव में दूध लेकर आने लगी। दूध के बदले उसे रोटी और ज़रूरत की दूसरी चीज़ें मिल जातीं, मगर औरतों की ज़बानें बदस्तूर चलती रहतीं।

"टीले पर अकेली रहती है। डर भी तो नहीं लगता। हम तो एक दिन में ही सहमकर मर जाते।"

"चुड़ैल को भी कहीं डर लगता है?"

"भला देखो तो, इतनी छोटी-सी लड़की और उस वीराने में अकेली रहती है, फिर भी कोई ग़म नहीं।"

चुन्नी सिर झुकाए उनकी बातें सुनती रहती और उसकी पलकें भीग जातीं। मगर वह ख़ामोश रहती, कहती भी क्या? कौन सुनता उसकी बात?

वीराने में रहने पर मजबूर उन्हीं लोगों ने तो किया था और वह भी बग़ैर किसी क़ुसूर के।

कई बार गाँव में यह बहस छिड़ी कि उस अभागिन का दूध ही न लिया जाए। मगर चूँकि उसकी गाय का दूध बहुत-ही उम्दा क़िस्म का होता था इसलिए बहस ख़त्म हो गई। किसी ने यह कहा कि अभागिन लड़की है, गाय नहीं। इनसान अभागा होता है, जानवर नहीं।

इसी तरह दिन गुज़रते गए। हफ़्ते गुज़रे, फिर महीने।

मनहूस लड़की को गाँव से निकालने के बाद गाँव से नहूसत दूर न हुई। वही ग़रीबी, वही बार-बार की मुसीबतें। कभी पानी की कमी, कभी बाढ़ और कभी वबाएँ। लोग इस ख़्याल से दिल बहला लेते थे कि अगर चुन्नी को गाँव से न निकाला गया होता तो गाँव के दुख और भी बढ़ जाते, हो सकता है आसमान टूट पड़ता और ज़मीन फट जाती।

गाँव पर सुबहें आती रहीं और शामें धुँधलके बिखेरती रहीं। सितारों के क़ाफ़िले आसमान की शाहराहों पर से हर रात गुज़रते रहे।

एक रात लोग हमेशा की तरह चौपाल पर इकट्ठा थे और कुछ इस क़िस्म की बातें हो रही थीं :

"तुमने सुना, टीलेवाली झोंपड़ी के आस-पास रात के वक़्त कुछ साए-से देखे गए हैं।"

"कलुआ धोबी भी यही कह रहा था। टीले के दूसरी तरफ़ तालाब पर कपड़े धोने जाता है। एक बार दिन छुप गया लौटते-लौटते, तभी उसने झोंपड़ी के पास हिलते-डुलते साए-से देखे थे।"

"भला क्या हो सकता है? अँधेरे में तो भूत ही होंगे।"

"दिन के उजाले में तो वहाँ कुछ भी नहीं नज़र आता।"

"पागल वहाँ घूमता-फिरता रहता होगा।"

"लेकिन जिस रात कलुआ धोबी ने साए देखे थे, उस रात को पागल भोंदू हलवाई की दुकान की भट्टी के सामने सो रहा था।"

"न जाने क्या हो? हमारी बला से।"

लोग इसी तरह चर्चा करते रहे।

देखते ही देखते हवा तेज़ हो गई, आसमान बादलों से घिर गया। बिजली चमकने लगी और बादलों की गड़-गड़ाहट से ज़मीन दहलने लगी। बूँदा-बाँदी शुरू हुई और मूसलाधार बारिश होने लगी। सड़क और गलियारों में नदी-नाले बहने लगे, सिवाय बारिश के शोर के और कोई आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। हवा की तेज़ी से पेड़ इस तरह हिल रहे थे जैसे आज जड़ों से ही उखड़ जाएँगे।

मुखिया ने कहा—"आज की बारिश में टीलेवाली झोंपड़ी शायद ही बाक़ी रह पाए।"

"हाँ", रहीमू चौधरी ने लम्बा साँस भरा, "न जाने उस बच्ची पर क्या गुज़रे?"

"अरे हमें क्या?" बुन्दू लोहार बोल पड़ा, "हमें उसकी परवाह क्यों हो?"

इनसानी हमदर्दी के जज़्बे बिजली के झमाकों की तरह थे जो एक पल के लिए दिखाई देते और फिर अँधेरों में खो जाते— बड़े गहरे थे उनके दिलों के अँधेरे। इनसानियत के झमाकों को पल भर में खा जाते थे। उसी वक़्त एक अजीब-सी घटना हुई।

चिराग़ी जो मवेशियों के ख़रीदने और बेचने का काम करता था, पानी में शराबोर हाँफ़ता-काँपता हुआ आया और मारे घबराहट के अटक-अटक कर कहने लगा—

"भाइयो! मैं...चाँद नगर...मवेशियों के बाज़ार से...लौट रहा था...रास्ते में ...बारिश ने आ लिया...टीले के पास...से जो गुज़रा...नज़र ऊपर उठाई... बिजली का झमाका हुआ...मैंने देखा...झोंपड़ी के चारों तरफ़...भ...भूत.....!"

चिराग़ी को चक्कर आ गया। उसका बदन थर-थर काँप रहा था।

चौपाल पर एकदम सन्नाटा छा गया और फिर सभी बोल उठे।

"हम पहले ही समझ गए थे, लड़की चुड़ैल है।"

"भूतों के साये में रहनेवाली भूतनी ही हो सकती है।"

"मेरा ख़याल है वे भूत नहीं, डाकू होंगे, लड़की डाकुओं की साथी है।"

"जादूवाली है, तभी तो बेख़ौफ़ होकर रहती है। दरिंदे भी उसे नुक़सान नहीं पहुँचा सकते, जबकि झोंपड़ी में किवाड़ तक नहीं है।"

"उसे टीले पर से भगाओ वरना गाँव में कोई बला टूटेगी।"

"चिराग़ी थोड़े ही झूठ कह रहा है।"

चौपाल के बाहर पागल बारिश में भीगता हुआ कह रहा था— "अँधेरों के बाशिन्दे हो तुम लोग। भूतों के अलावा तुम्हें और क्या नज़र आएगा? अरे अन्धो! भूत क्या तुमसे भी बुरे होंगे जो एक बेसहारा बच्ची को अपने साए में रखे हुए हैं?"

लोग चिल्लाए— "अरे यह फिर चला आया। चल, भाग यहाँ से।"

अचानक मुखिया के दिल में न जाने क्या ख़याल आया कि वह उठा, लालटेन एक हाथ में पकड़ी और दूसरे हाथ में लाठी ली।

"मैं खुद जाकर पता लगाता हूँ कि यह क्या भेद है।" उसने कहा। लोगों ने हैरानी से कहा— "अकेले ही? ऐसी तूफ़ानी रात में? भूत-प्रेत का मामला है।"

"जब भूत एक छोटी-सी लड़की का कुछ न बिगाड़ सके तो मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। मैं तो उससे बड़ा हूँ। तुम बेफ़िक्र रहो, मुझे कुछ नहीं होगा।" मुखिया बोला।

वह बाहर आया तो बारिश कुछ थम गई थी। बादल अब भी आसमान में गड़गड़ा रहे थे। मेंढकों की टर्राहट हर तरफ़ गूँज रही थी।

वह कच्ची सड़क के पानी से भरे गढ्ढों से बचता हुआ गाँव से बाहर निकल आया। अब उसके क़दम टीले की तरफ़ उठ रहे थे, उस टीले की तरफ़ जहाँ शाम में अन्धेरा फैलने के बाद कोई जाने की हिम्मत नहीं करता था। सुनसान, वीरान और ख़ौफ़नाक टीला जो शायद भूतों या डाकुओं का ठिकाना था।

चलते-चलते उसने सोचा, "अगर वहाँ वाक़ई भूत हुए तो?"

"देखा जाएगा" उसने बेख़ौफ़ी से कँधों को झटककर खुद से कहा, "जो

कुछ भी है आज उसका राज़ मालूम हो जाएगा।"

वह तेज़ी से क़दम बढ़ा रहा था। लालटेन को अपनी चादर की आड़ में कर रखा था। ताकि वह बुझ न जाए। हवा अब भी साएँ-साएँ चल रही थी। बिजली ज़ोर से चमकी और फिर बादलों की गरज ने ज़मीन को दहला दिया। वह उछल पड़ा, मगर दूसरे ही पल उसके क़दम फिर आगे की तरफ़ उठने लगे।

जंगल में गीदड़ों की 'हाओ-हाओ' हर तरफ़ सुनाई दे रही थी। कभी-कभार किसी दरिंदे की दहाड़ भी गूँज जाती। बारिश सर पर खड़ी थी। वह किसी तरह टीले तक पहुँच ही गया। यहाँ से चढ़ाई शुरू होती थी। अँधेरों में डूबी हुई चोटी पर झोंपड़ी ख़ामोश खड़ी थी।

वह टीले के ऊपर चढ़ तो गया मगर उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। बदन पर रोंगटे-काँटों की तरह खड़े हो गए, वह ठिठककर रुक गया। "भाग जा, भाग जा!" उसका दिल कह रहा था, "यह किन बलाओं में आ फँसा है?"

उसने अँधेरे में भी देख लिया था। झोंपड़ी के चारों तरफ़ कुछ साए से खड़े थे। नहीं, नहीं वे शायद इनसान ही थे। बिजली चमकी तो उसने देखा, उनके बदन पर सफ़ेद लिबास थे और कंधों पर नंगी तलवारें। वे मूर्तियों की तरह चुपचाप थे। हिम्मत करके उसने क़दम आगे बढ़ाया।

"ख़बरदार!" उनमें से एक ने मुखिया को ललकारा, "वह सो रही है, झोंपड़ी से दूर रहो।"

उसने कहा— "यक़ीन करो, मैं उसे नुक़सान पहुँचाने नहीं आया। बस एक नज़र उसे देख लेने दो।"

"ठीक है, देख लो! मगर उसकी नींद न ख़राब हो।"

उसने दरवाज़े पर खड़े होकर अन्दर देखा तो हैरत के मारे लालटेन उसके हाथ से छूटकर गिरते-गिरते बची। कहीं वह ख़्वाब तो नहीं देख रहा था? दाँतों से अपनी उँगली को काटकर देखा और दर्द से बिलबिला उठा।

उसकी निगाहों के सामने एक महल का शानदार कमरा था, जिसके ऊपर फर्श पर नर्म और मोटा क़ालीन बिछा था। दीवारें संगमरमर की थीं

जिन पर रंगीन बेल-बूटे बने हुए थे, बिल्लौरे, झाड़-फ़ानूस लटक रहे थे। काफ़ूरी शमएँ सफ़ेद ठंडी रौशनी बिखेर रही थीं और कमरे के बीचों-बीच एक ख़ूबसूरत छपरखट पर रेशमी परदों के अन्दर, चुन्नी शहज़ादियों जैसे कपड़े पहने मीठी नींद सो रही थी।

न जाने क्या जादू था?

जब वह वापस जाने लगा तो उन भेदी सायों या इनसानों में से एक ने कहा—

"ठहरो!"

वह सहम कर रुक गया।

"जो कुछ भी तुमने देखा वह राज़ ही रहे—समझे!"

उसने सिर हिला दिया और वापसी के लिए धीरे-धीरे क़दम बढ़ाने लगा। आख़िर वह गाँव वापस लौट आया।

सारी रात वह एक पल भी न सो सका। टीले पर वे साए, झोंपड़ी के अन्दर का वह अजीबो-ग़रीब मंज़र सब कुछ उसकी आँखों के सामने घूमता रहा। किसी तरह रात काटी, जैसे ही गाँव में मुर्ग़ों ने बाँगें देनी शुरू कीं, वह लाठी उठाकर फिर टीले की तरफ़ चल पड़ा।

वहाँ पहुँचते-पहुँचते दिन का उजाला फैलने लगा। रात की बारिश की वजह से रास्ते में कीचड़ ही कीचड़ भरी थी। सूखे तालाब भी लबालब भर गए थे। जब वह टीले पर पहुँचा तो वहाँ कोई भी न था।

झोंपड़ी के अन्दर झाँका। वही टूटा हुआ फ़र्श, आधा छप्पर, टूटी-फूटी दीवारें, छप्पर के नीचे घास-फूँस पर चुन्नी अपने फटे-पुराने कपड़ों में बेख़बर सो रही थी। वहीं एक कोने में उसकी गाय बैठी थी। फ़र्श पर कीचड़ ही कीचड़ था।

"चुन्नी! चुन्नी!" मुखिया ने उसे झँझोड़ा। वह आँखें मलती हुई उठ बैठी और मुखिया को देखकर हैरान रह गई।

"रात में नींद कैसी आई?" मुखिया ने पूछा।

"वैसी ही जैसे रोज़ आती है।" चुन्नी ने जवाब दिया।

"रात को तूफ़ान भी तो आया था।" मुखिया ने उसके चेहरे को ग़ौर से देखते हुए कहा।

वह हँस कर बोली– "चाचा, जब नींद आ जाए तो क्या आँधी और क्या तूफ़ान!"

अब तो मुखिया और भी चकराया। वह भी वहीं बैठ गया और बोला– "बेटी! एक बात पूछूँ?"

"हाँ, हाँ!"

"रात को तुझे डर नहीं लगता?"

"भला ऐसे वीरान में किसे डर न लगेगा?" चुन्नी ने जवाब दिया।

मुखिया ने फिर पूछा– "तो फिर तू यहाँ रातें कैसे गुज़ारती है?"

वह हँसकर बोली, "बस यूँ ही। डर तो बहुत लगता है, मगर नींद डर को ख़त्म कर देती है।"

मुखिया गहरी सोच में डूब गया, फिर बोला– "अच्छा, ज़रा यह तो बता कि सोने से पहले तू क्या करती है?"

चुन्नी ने बड़ी मासूमियत से कहा– "कुछ भी तो नहीं। बस अँधेरे में थर-थर काँपते हुए पयाल पर लेटकर आँखें बन्द कर लेती हूँ और फिर मेरा दिल पुकार उठता है– ऐ अँधेरों और उजाले के मालिक! इस अँधेरी और ख़ौफ़नाक रात में जबकि बच्चे माओं की बाज़ुओं की पनाह में बेफ़िक्र सो रहे होंगे, यह छोटी-सी बच्ची अकेली, बेसहारा, बेघर और बेबस है। सुना है, जिन्हें कहीं पनाह नहीं मिलती वे तेरी पनाह में आते हैं। ये डरावने अँधेरे, यह वीरानी, ये सरसराती हवाएँ, यह जंगल और इसमें दहाड़ते जानवर, और इनके बीच मैं अकेली! सुना है तू कभी किसी को अकेला नहीं छोड़ता। ऐ आसमान की अँधेरी राहों में सितारों के चिराग़ जलानेवाले! क्या तेरे उजालों में मेरा कोई हिस्सा नहीं? मुझे अकेला न छोड़ मेरे मालिक, मेरी हिफ़ाज़त कर, मुझे अपनी पनाह में रख– मुझे हौसला दे। तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं। यह टूटी हुई झोंपड़ी, जिसमें किवाड़ भी नहीं है, मैं बिलकुल महफ़ूज़ नहीं हूँ। मेरी निगहबानी कर....."– और फिर वह चुप हो गई।

मुखिया के दिमाग़ में आँधियाँ-सी चल रही थीं, तूफ़ान उठ रहे थे।

उसका पूरा बदन काँप रहा था।

"फिर क्या करती है तू?" उसने पूछा।

"फिर आँखों में नींद भर आती है और न जाने कब रात बीत जाती है।"

मुखिया ने फिर काँपती हुई आवाज़ में सवाल किया– "क्या तूने कभी रात को झोंपड़ी के आस-पास कुछ देखा है?"

"हाँ।"

"क्या?"

"अँधेरे।"

और वह खिलखिलाकर हँस पड़ी। मुखिया की समझ में सारी बात आ गई। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

उसी शाम चौपाल पर सारा गाँव था और मुखिया के पास चुन्नी बैठी हुई थी। मुखिया कह रहा था, "तुम सब लोग कान खोलकर सुन लो, चुन्नी आज से मेरी बेटी है और मेरे घर में ही रहेगी।"

कुछ आवाज़ें सुनाई दीं– "मगर यह तो अभागिन और मनहूस है। चाँद ग्रहण की रात को पैदा हुई थी। माँ-बाप को खा गई।"

मुखिया ने दहाड़कर कहा– "जिहालत की बातें न करो। याद रखो, जिसके हुक्म से चाँद-सूरज ग्रहण लगता है, जो हर जानदार को जिलाता और मारता है, वही इसका भी निगहबान है। वह इससे बहुत प्यार करता है, क्योंकि तुमने इसे अपना प्यार नहीं दिया है। जिन्हें तुम ठुकरा देते हो उन्हें उसकी रहमत बढ़कर अपनी गोद में ले लेती है। किसने तुम्हें यह हक़ दिया है कि उसके बन्दों के बारे में फ़ैसला करो? क्या हक़ है तुम्हें इसे गाँव से निकालने का? ख़बरदार जो कभी किसी ने जिहालत की बातें कीं!"

भीड़ पर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था।